गायत्री उपासना कर्मकाण्ड भाग - 1

गायत्री माता के सनातन पारिवारिक 24 ऋषि व उनके गुण

सांख्य दर्शन के अनुसार यह सारा सृष्टि क्रम 24 तत्वों के सहारे चलता है उनका प्रतिनिधित्व गायत्री के 24 अक्षर करते हैं... (वाङ्मय - 9,10.12) गायत्री के चौबिस अक्षर ही दत्तात्रेय के परम् समाधान कारक सद्गुरु है... (वा0 9, 10.12)

(हमें बीज रूप में शक्ति सँजोये ऋषि (ऋषि आस्थावान पुरुषार्थ को कहते है... वाङ्मय 9, 10.13) सत्ताएँ प्रज्ञा परिवार के रूप में हाथ लगी हैं ... वाङ्मय - 15, 7.72)

लक्ष्य :- मनुष्य में देवत्व का उदय एवं धरती पर स्वर्ग का अवतरण (बीज को वृक्ष बनने के लिए गल कर सद्गुणों के रूप में विकसित तथा वृक्ष को पुनः बीज प्राप्ति के लिये पके फल देना पड़ता है।)

नाहं वसामि वैकुण्ठे न योगिनाम् हृदयेच। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदा।। ... भगवान् विष्णु जी (न मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ, न योगियों के हृदय में; मेरा वास वहीं, जहाँ मेरे भक्त मेरा गुणगान करते हैं। ... वाङ्मय 12, 3.52)

(सर्वभुता सम्पन्न सहस्रार चक्र दिव्य शक्तियों का केन्द्र बिन्दु है। अतः गायत्री मंत्र से सहस्रार चक्र में गुणों के लिए गान (जप) किया जाय तो ईश्वर के गुणों का अवतरण साधक के अन्तःकरण में सहज ही होता है। उन गुणों पर पुरुषार्थ करने पर साधक का स्वतः और सहज ही कर्म योग भी सधता है।)

ऋषियों और देवताओं का परस्पर समन्वय है, क्योंकि ऋषियों (गुण ही प्रत्यक्ष ऋषि है ... वाङ्मय - 9,10.14) की साधना से विष्णु की तरह सुप्तावस्था में पड़ी रहने वाली देवसत्ता को जाग्रत होने का अवसर मिलता है। देवताओं के अनुग्रह से साधकों को उच्च स्तरीय वरदान मिलते हैं, वे सामर्थ्यवान बनते हैं और स्व-पर कल्याण की महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। ऋषि सद्गुण हैं और देवता उनके प्रतिफल। ऋषि को जड़ और देवता को वृक्ष कहा जा सकता है। ऋषित्व और देवत्व के संयुक्त प्रभाव का परिणाम फल-सम्पदा के रूप में सामने आता है। ... (वाङ्मय 9, 10.13)

विनियोग :- मंत्र विद्या के अनुसार मंत्रों के विनियोग के पाँच अंग है- ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व। इन्हीं से मिलकर मंत्र शक्ति पूर्ण बनता है ... (वाङ्मय 12, 8.14) और 24 अक्षरों के लिए 24 विनियोग बनने पर उनके 24 देवता, 24 ऋषि एवं 24 छन्द बन जाते हैं ... (वाङ्मय 9, 10.13)

ध्यान :- सहस्रार अथवा हृदय चक्र में (गायत्री महा विज्ञान - 280) (मानसिक जप करना सुनते हुये भाव (इच्छा) करते रहें कि जिस ऋषि का सूर्य मण्डल से पृथ्वी पर अवतरण हो रहा है उस ऋषि से गुण के रूप मे चेतना का अवतरण हम ग्रहण कर रहे हैं)

ब्रह्मज्ञानं

ॐ प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा सूक्ष्म रूप से ब्रह्म तथा ईश्वर के साथ सद्व्यवहार करने की सिद्धि प्राप्त करना ह्रीं

पूर्व

ॐ

स्वामी सर्वेश्वरानन्द जी (दादा गुरु देव)

परम पूज्य सद्गुरु देव का दिव्य स्वरूप

ईशान सत्यं

आग्नेय भूः

सद्ज्ञानं

प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा सूक्ष्म रूप से सभी प्राणियों के साथ सद्व्यवहार करने की सिद्धि प्राप्त करना

उत्तर तपः

आत्मज्ञानं

प्रत्यक्ष, परोक्ष तथा सूक्ष्म रूप से सभी आत्माओं के साथ सद्व्यवहार करने की सिद्धि प्राप्त करना

दक्षिण भुवः

तत् सवितुः वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

भूः भुवः स्वः

विश्वामित्र आत्मीयता

कपिल आस्तिकता

शौनक श्रद्धा

वायव्य जनः

नैऋत्य स्वः

महः

पश्चिम

श्रीं तत्वज्ञानं वलीं

युग ऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य (पूज्य गुरु देव)

स्नेह सलीला भगवती देवी शर्मा (वन्दनीया माता जी)

जप के पूर्व पढ़ें :- गायत्री माँ हमारी सद्बुद्धि तथा सद्गुणों को पवित्र मार्ग से कल्याणकारी लक्ष्य की दिशा में, योग साधना व लोक सेवा के कार्यों में, शालीनता तथा उदारतापूर्वक सदुपयोग करने के लिए प्रेरित करने की सतत कृपा बनाये रखें। अनुष्ठानों की एक आवश्यकता यह है कि उसका 1. मार्गदर्शन 2. संरक्षण 3. परिमार्जन करने के लिए एक व्यक्ति की आवश्यकता होती है ... (वाङ्मय 12, 6.26) हे गुरुदेव - माता जी, दादा गुरुदेव, ऋषिसत्ताओं ... प्रणाम्। हम पर मार्गदर्शन, संरक्षण तथा परिमार्जन करने की सतत कृपा बनाए रखें, जिससे स्वधर्म का आचरण संघबद्ध हो कर निष्ठापूर्वक, पवित्र मार्ग से कल्याणकारी लक्ष्य की दिशा में, भावना, परिश्रम तथा प्रमाणिकता पूर्वक योग साधना व लोकसेवा के कार्यों को शालीनता और उदारतापूर्वक अपने आध्यात्मिक साथियों के साथ निर्विघ्न रूप से करते रहें।

आत्मीय निवेदन :- जिन चौबीस चैतन्य तत्वों से प्रकृति का निर्माण, संचालन, तथा नियन्त्रण होता है उन तत्वों पर अधिकार केवल ईश्वर के सनातन चौबीस गुणों द्वारा होता है। परीक्षार्थी पुरुष (चेतना) तत्व की प्राप्ति करने के लिए सनातन गुणों का अभ्यास करके अपना स्वभाव बनाना पड़ता है। इसी से आत्मिक अमरता तथा पूर्ण निर्भयता प्राप्त होती है और सभी दुःखों (अज्ञान, अशक्ति, अभाव) से पूर्णतः निवृत्ति हो जाती है। इसलिए जिस विधि से बन बड़े सनातन गुणों का अभ्यास कर अपना सहज स्वभाव बनाते रहना चाहिए, जो जीव तथा मानव मात्र का परम लक्ष्य है।

गायत्री उपासना कर्मकाण्ड

(लगभग सभी क्रियाएँ सूक्ष्म शरीर से करें)

गायत्री साधना की सफलता योग्य गुरु के मार्ग दर्शन में ही सफल होती है-

यदि उपयुक्त व्यक्ति न मिले तो किसी स्वर्गीय, पूर्व कालीन या दूरस्थ व्यक्ति की प्रतिमा को गुरु मानकर यात्रा आरम्भ की जा सकती है। एक आवश्यक परम्परा का लोप न हो जाए, इसलिए किसी साधारण श्रेणी के सत्पात्र से भी काम चलाया जा सकता है। गुरु का निर्लोभ, निरहंकारी एवं शुद्ध चरित्र होना आवश्यक है। यह योग्यताएँ जिस व्यक्ति में हों, वह काम चलाऊ गुरु के रूप में काम दे सकता है। यदि उसमें शक्ति दान एवं पथ प्रदर्शक की योग्यता न होगी, तो भी वह अपनी श्रद्धा को बढ़ाने में साथी की तरह सहयोग अवश्य देगा । 'निगुरा' रहने की अपेक्षा मध्यम श्रेणी के पथ प्रदर्शक से काम चल सकता है । यज्ञोपवीत धारण करने एवं गुरु दीक्षा लेने की प्रत्येक द्विज को अनिवार्य आवश्यकता है । चिह्न पूजा के रूप में यह प्रथा चलती रहे तो समयानुसार उसमें सुधार भी हो सकता है, पर यदि उस शृंखला को ही तोड़ दिया तो उसकी नवीन रचना कठिन होगी।

गायत्री द्वारा आत्मोन्नति होती है यह निश्चित है । मनुष्य के अन्त: क्षेत्र के संशोधन, परिमार्जन, संतुलन एवं विकास के लिए गायत्री से बढ़कर और कोई ऐसा साधन भारतीय धर्म शास्त्रों में नहीं है, जो अतीत काल से असंख्यों व्यक्तियों के अनुभवों में सदा खरा उतरता आया हो । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अन्त:करण चतुष्टय गायत्री द्वारा शुद्ध कर लेने वाले व्यक्ति के लिए सांसारिक जीवन में सब ओर से, सब प्रकार की सफलताओं का द्वार खुल जाता है। उत्तम स्वभाव, अच्छी आदतें, स्वस्थ मस्तिष्क, दूरदृष्टि, प्रफुल्ल मन, उच्च चरित्र, कर्तव्यनिष्ठा आदि प्रवृत्तियों को प्राप्त कर लेने के पश्चात् गायत्री के साधक के लिए संसार में कोई दु:ख, कष्टकर नहीं रह जाता, उसके लिए सामान्य परिस्थितियों में भी सुख ही सुख उपस्थित रहता है।

परन्तु गायत्री का यह लाभ केवल २४ अक्षर के मन्त्र मात्र से उपलब्ध नहीं हो सकता। एक हाथ से ताली नहीं बजती, एक पहिए की गाड़ी नहीं चलती, एक पंख का पक्षी नहीं उड़ता, इसी प्रकार अकेली गायत्री साधना अपूर्ण है, उसका दूसरा भाग गुरु का पथ प्रदर्शन है। गायत्री गुरु मन्त्र है। इस महाशक्ति की कीलित कुंजी अनुभवी एवं सुयोग्य गुरु के पथप्रदर्शन में सन्निहित है । जब साधक को उभय पक्षीय साधन, गायत्री माता और पिता गुरु की छत्रछाया प्राप्त हो जाती है, तो आशाजनक सफलता प्राप्त होने में देर नहीं

लगती।- गायत्री महाविज्ञान भाग- 3/405-406

आत्मिक प्रगति की अनिवार्य शर्त-

गायत्री उपासना का लाभ और चमत्कार देखने के इच्छुकों को केवल साधना विधान के कर्मकाण्ड की बारीकियों को ही नहीं ढूँढ़ते रहना चाहिए वरन् अपनी शारीरिक एवं मानसिक भूमिका का भी परिष्कार करने के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। ठीक है विधि विधानों का भी अपना महत्व है। ठीक है बीज मन्त्र तथा दक्षिणमार्गी, वाममार्गी साधना-विधान अपना-अपना विशिष्ट प्रतिफल उत्पन्न करते हैं पर इसके लिए उनकी समुचित जानकारी इस महाविद्या के प्रयोगकर्ताओं को ठीक तरह अनुभव और अभ्यास में लानी चाहिए। इसके लिए अनुभवी मार्गदर्शक और ऋषि परम्परा की शास्त्रीय पद्धति का अवलम्बन ग्रहण करना चाहिए। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आध्यात्मिक उपासनाओं के पथ पर गतिशील होने के आकांक्षी साधक को अपने व्यक्तित्व की उत्कृष्टता बढ़ाना तथा स्थिर रखना नितान्त आवश्यक है। आत्मिक प्रगति की यह एक अनिवार्य शर्त है।-(गायत्री महा विद्या का तत्व दर्शन-3/34)

साधना से अहंकार तक सिद्धि पहुँच-

अहंकार तक सीधी पहुँच साधना के अतिरिक्त और किसी माध्यम से नही हो सकती। मन और बुद्धि को शान्त, मूर्च्छित, तन्द्रित अवस्था में छोड़कर सीधे अहंकार तक प्रवेश पाना ही साधना का उद्देश्य है। गायत्री साधना का विधान भी इसी प्रकार का है। उसका सीधा प्रभाव अहंकार पर पड़ता है। गीता कहती है कि -यो यच्छ्रद्धःस एव सः, जो अपने सम्बन्ध में जैसी श्रद्धा-मान्यता रखता है वस्तुतः वैसा ही होता है। गायत्री साधना अपने साधक को दैवीय आत्मविश्वास, ईश्वरीय अहंकार(सद्गुण) प्रदान करती है। और वह कुछ ही समय में वस्तुतः वैसा हो जाता है। जिस स्तर पर उसकी आत्ममान्यता है, अपनी स्वयं की आन्तरिक सहमति है उसी स्तर पर चित्त वृतियां रहेंगी। भविष्य में वैसी आदतें, इच्छाएं, रूचियां, प्रवृतियां, क्रियाएं उसमें दीख पड़ेंगी। जो दिव्य मान्यता से ओत-प्रोत होगी।

यह साधना प्रक्रिया मानव अन्त:करण का कायाकल्प कर देती है। जिस आत्म-सुधार के लिए उपदेश सुनना और पुस्तक | पड़ना विशेष सफल नही होता था, वह कार्य साधना द्वारा सुविधापूर्वक हो जाता है। यही साधना विज्ञान का रहस्य है।-गायत्री महाविज्ञान-

द्वितीय श्रेणी के साधक का महत्व -

गायत्री उपासकों में आरम्भिक श्रेणी के लोगों की संख्या अधिक होती है । ये लोग लाभ होने पर उत्साहित और लाभ न होने पर निराश हो जाते हैं, भिखारियों की भीड़ दरवाजे पर से हट जाय इसमें ईश्वर को भी सन्तोष होता है । पर जो लोग ऊँची श्रेणी के होते हैं अपने भौतिक लाभों की याचना करना छोड़कर माता-पिता की इच्छा और आज्ञा के लिए आत्म-समर्पण करते हैं वे उनकी वात्सल्य के सच्चे अधिकारी बनते हैं । ऐसे लोगों को पहला काम यही करना होता है कि माता के मिठाई खिलाने और आपरेशन के लिए डाक्टर के पास ले जाने में समान रूप से दया, करुणा एवं वात्सल्य का अनुभव होता है वे दोनों ही स्थितियों में श्रद्धालु रहते हैं । अपने लिए कुछ भी-सुख भी-न मँगाकर माता के चरणों पर उनके आदर्शों पर अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं।

गायत्री परिवार के अनेक सदस्य हैं । इनमें से अनेक बाल क्रीड़ा में रूठते मटकते हँसते रोते रहते हैं । कुछ उत्साह दिखाते हैं कुछ निराश हो जाते हैं । इस श्रेणी से ऊँची श्रेणी के उपासकों की आवश्यकता है । अपने परिवार में से अब हम दूसरी श्रेणी के लोगों को ढूँढ़ना चाहते हैं । क्योंकि उन्हीं के ऊपर संसार का भविष्य बहुत कुछ निर्भर करेगा और वे ही इस महान शक्ति के वास्तविक लाभों से कुछ प्राप्त कर सकेंगे। दूसरी ऊँची श्रेणी के लोग अपने किसी स्वार्थ की चिन्ता न करके माता को आत्म-समर्पण कर देते हैं और उनके आदेशानुसार अपने जीवन को लगाते हैं ।

आज गायत्री माता की जानकारी लुप्त प्राय हो गई है । उसकी समुचित प्रतिष्ठा करके अनेक आत्माओं का कल्याण करना माता की सर्वोत्तम सेवा है । उन्होंने हमें भी ऐसा ही आदेश दिया है तदनुसार एक निश्चित कार्यक्रम में हम लगे हुए हैं। इस दिशा में कन्धे से कन्धा लगाकर काम करने वाले ऐसे साथियों की आवश्यकता है जो दूसरी ऊँची कक्षा के महत्व को समझते हों या समझने में दिलचस्पी रखते हों।-गायत्री महाविद्या का तत्व दर्शन -9.48

जप की समय सीमा-

अनुष्ठान (अतिरिक्त आध्यात्मिक सामर्थ्य उत्पन्न करने के निए संकल्पपूर्वक नियत संयम-प्रतिबन्धों एवं तपश्चर्याओं के साथ विशिष्ट उपासना--वाङ्गमय 12, 5.3) में न्युनतम एक घण्टा समय की मर्यादा है । एक घण्टा से कम की साधना नित्य कर्म में गिनी जाती है । वह मानसिक शुद्धता का दैनिक प्रयोजन पूरा करती है । अवशिष्ट

शक्ति उत्पादन के लिए एक घण्टे से अधिक का समय लगाने पर ही आवश्यक ऊर्जा उत्पन्न होती है । छह घण्टे अधिकतम इसलिए माने गए हैं कि उतने में आध्यात्मिक श्रम की चरम सीमा पूरी हो जाती है । शारीरिक श्रम 8 घण्टे, मानसिक श्रम 7 घण्टे और आध्यात्मिक श्रम 6 घण्टे बन पड़े तो उसे पूर्ण माना जाएगा । इससे अधिक भार उठाने पर अनुपयुक्त थकान चढ़ती है और श्रम करने की सामान्य क्षमता को आघात पहुँचता है । मध्यम चाल और सीमित दूरी तक नित्य चलते रहने पर बहुत दिनों तक यात्रा जारी रखी जा सकती है और लम्बी मंजिल पूरी हो सकती है । किन्तु यदि दौड़ लगाई जाए तो दो-चार दिन में ही टांगें दुखने लगेंगी । सामान्य क्रम से चलते रहने पर जितना सफर हो सकता था वह भी न हो सकेगा । अति को सर्वत्र वर्जित किया गया है । अनुष्ठानों में अतिवादी उत्साह भर देने से मस्तिष्क में अनावश्यक गर्मी उत्पन्न होती है और सिर भारी या गर्म रहने जैसी शिकायतें उत्पन्न हो जाती है ।

अधिक लाभ पाने के लिए अधिक जल्दी करने, अधिक भार बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है । श्रद्धा की मात्रा बढ़ा देना ही पर्याप्त है । अधिक मनोयोग और अधिक भावना रहने से ही आध्यात्मिक साधनाओं में प्रगति होती है । भावनात्मक पवित्रता और चारित्रिक उत्कृष्टता का खाद पानी पाकर उपासना की फसल तेजी से बढ़ती है । उसे अनावश्यक शारीरिक श्रम से लादने पर वह जल्दबाजी अभीष्ट परिणाम प्राप्त होने में और भी देरी लगा देती है। इस सन्दर्भ में उतावली बरतना असन्तुलन का परिचायक है। इससे लाभ कम और हानि अधिक होती है।-**(वाङ्गमय12/ 6.12)**

सुख चाहें तो ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करें

चैतन्य प्राणियों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए प्रश्नोपनिषद् में बताया गया है कि सर्वप्रथम दो शक्तियों का आविर्भाव हुआ - एक रयि, दूसरा प्राण । कात्यायन कबन्धी के प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद ने बताया है कि इन्हीं दो शक्तियों के सम्मिश्रण से चैतन्य जीवन विभिन्न आकार प्रकार में निर्मित हुए । विद्युत् विज्ञानवादी रयि और प्राण शक्ति को 'नेगेटिव और पॉजिटिव' कहते हैं । समाजशास्त्री इन्हें नर शक्ति एवं नारी शक्ति बताते हैं, अध्यात्मवादी प्रकृति पुरुष नाम देते हैं, मनोविज्ञान के अनुसार यह इच्छा और क्रिया कहे जाते हैं, योग शास्त्र में इन्हीं को ज्ञान और भक्ति कहकर पुकारा गया है, सारे जगत् में सूर्य और चन्द्रमा इनकी प्रतिमूर्तियाँ हैं ।

क्रम यह है कि रयि द्वारा प्राण का आकर्षण होना चाहिए । जिस क्रम में रयि शक्ति विकसित होती है उसी क्रम में से प्राण की धारणा होती है । घड़े में जितना स्थान

हो उतना ही पानी भरना चाहिए, यदि घड़े के स्थान की परवाह न करके अन्धाधुन्ध पानी भरा जाएगा तो उससे विकृति उत्पन्न होगी और परिणाम हानिकर होगा। **भक्ति की अपेक्षा ज्ञान अधिक होगा तो नास्तिकता बढ़ेगी,** जितनी इच्छा है उससे अधिक क्रिया करनी पड़ेगी, तो करने वाला थक जाएगा और कष्ट अनुभव करेगा। सृष्टि के सभी जीव इस नियम से परिचित हैं और उसका यथाविधि पालन करते हैं। रति संयोग के सम्बन्ध में समस्त पशु-पक्षी मादा की इच्छा का पालन करते हैं। सृष्टि का कोई प्राणी मादा की सम्भोग इच्छा के अतिरिक्त उस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालता।

मादा की सम्भोगेच्छा बहुत ही स्वल्प और एक विशेष आवश्यकता होने पर प्रकट की जाती है। संकोच और विकास (Contraction and Expansion) के नियमों से मादा बँधी हुई है। फूलों की कलियाँ बन्द रहती हैं अपनी सामर्थ्य बढ़ाने तक चुप रहती हैं, जब उनके भीतर संकोच की मर्यादा पूरी हो जाती है और रयि का पर्याप्त संचय हो जाता है तो वे अपनी रूप शक्ति का विकास करने के निमित्त खुलती हैं और प्राण रूप क्रिया शक्ति का संयोग होने पर फल पैदा करने के लिए फिर संकोच कर लेती हैं। रयि का उत्तेजन प्रकृत स्वभाव से उचित अवसर पर होता है और प्राण प्राप्त होते ही तुरन्त शान्त हो जाता है और अपना उद्‌देश्य पूरा करके पुनः शक्ति संचय करके वैसा ही अवसर आए बिना फिर जाग्रत नहीं होता। स्त्री की सम्भोगेच्छा स्वाभाविक रूप से ऋतु काल में होती है, सो भी हर ऋतु में नहीं, यदि कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट हो तो ऋतु होने पर भी रयि का उत्तेजन नहीं होता।

मैथुन केवल स्त्री की रयि उत्तेजन की आवश्यकता के पूर्ति के लिए होना चाहिए। चटोरी लालसा द्‌वारा जैसे भूख न रहने पर भी सुस्वादु भोजनों के लिए मन मचलता है, वैसे ही स्त्रियों को चटोरी काम वासना भी हो सकती है। इसकी सूक्ष्म दृष्टि से विवेचना करनी चाहिए और मानसिक विकार का विरोध करते हुए केवल स्वाभाविक आवश्यकता का ही आदर करना चाहिए। चटोरी भूख को पूरा करते रहने से शरीर रोगों का घर बन जाता है, वैसे ही जीवन की मूलभूत चेतना रयि का दुरुपयोग होने से स्त्रियों का जीवन तत्त्व नष्ट होता है और मानव शरीर की अनेकानेक महत्ताओं से उन्हें सर्वथा वंचित रहना पड़ता है।

पुरुषों का अपना दृष्टिकोण पूर्ण ब्रह्मचारी रहने का होना चाहिए। उन्हें स्वेच्छा से वीर्य नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है। रयि की तृप्ति के लिए प्राण प्रदान करने की अनुमति मिली हुई है, इसका उपयोग दूसरे पक्ष की आवश्यकता पर निर्भर है। पुरुष

का अपना निजी विचार हर समय कठोर ब्रह्मचर्य के लिए रहना चाहिए क्योंकि उसका यही कर्तव्य है ।

यह समझना बड़ी भारी भूल है कि वीर्य शरीर का एक मल है और उसे निकालना ही चाहिए । यदि ऐसी बात होती तो मलमूत्र की तरह वीर्य के लिए भी कोई विशेष प्रक्रिया होती, किन्तु देखा जाता है कि शरीर में भी वीर्य के भण्डार नहीं भरे हैं । यह अमूल्य पदार्थ रक्त में अदृश्य रूप से इस प्रकार छिपा हुआ है कि बिना अत्यन्त आवश्यकता के इसका उपयोग न हो सके। उपनिषदों में रेतस् शब्द 'तेज' के अर्थ में उपयोग किया गया है। वीर्य एक चिकनी लेसदार वस्तु नहीं है, वरन् जीवन का प्रत्यक्ष तेज है । आत्मा, आत्मा से उत्पन्न होता है, न कि शरीरस्थ मल मूत्रों से । रक्त, माँस, हड्डी आदि धातुओं से यदि आप सन्तान उत्पन्न करना चाहें तो कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उनमें चैतन्य तत्त्व नहीं है । वीर्य में आत्मा का तेजस् है, प्राण है, चैतन्य है, इसीलिए तो वह सन्तान उत्पन्न कर सकता है । विचार तत्त्व को प्रकट करने के लिए मस्तिष्क एक साधन है। इस प्रकार आत्मा के चैतन्य तत्त्व का प्रत्यक्ष दर्शन वीर्य रूप में होता है ।

वीर्य शरीर का एक भाग है, इसका खण्डन उन उदाहरणों से हो जाता है, जिनमें कि अन्धे पिता के नेत्रों वाली और अंग भंग पिताओं के पूर्ण अंगों वाली सन्तान उत्पन्न होती है । यदि वीर्य शरीर का एक ही भाग होता तो जो अंग पिता के शरीर में नहीं हैं वह बालक में भी न होने चाहिए थे । अंगों के नष्ट होने से आत्मा में से वे भाग चले नहीं जाते, इसीलिए वीर्य का तेज, पूर्ण अंग वाली सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ रहता है। मरे हुए व्यक्ति का वीर्य क्या किसी को गर्भ धारण करा सकता है? लेसदार पदार्थ लकड़ी के समान है । आत्म तेज की अग्नि जब उसमें सम्मिलित रहती है तब उसमें प्रज्ज्वलित होने से क्रियाशीलता आती है ।

आत्म तेज एक प्रेरक शक्ति है, वह मानस जीवन को विकसित करने के लिए उत्तेजना देती है हमें अनेक दिशाओं में प्रगति करनी होती है और उस सबके लिए शक्ति का प्रवाह वीर्य द्वारा प्राप्त होता है । नगर भार में बिजली द्वारा असंख्य स्थानों पर असंख्य कार्य होते रहते हैं, परन्तु उद्गम केन्द्र 'बिजलीघर' में ही है । मनुष्य के सामने एक बड़ी यात्रा पड़ी हुई है, उसे ठीक तरह पूरी करने के लिए शरीर की मोटर में पैट्रोल भरा गया है कि हाय! कितने दुःख की बात है, कि हम लोग ऐसे बहुमूल्य पदार्थ को क्षण भर के तुच्छ स्पर्श सुख के लिए बर्बाद कर रहे हैं । मोटर के पेट्रोल को आतिशबाजी

का तमाशा करने में फूँक रहे हैं जो शक्ति हमें सर्वथा सुरक्षित रखनी चाहिए और स्वेच्छा से जिसका एक बूँद भी स्पर्श सुख के लिए खर्च नहीं करना चाहिए, उस बहुमूल्य पदार्थ को मानसिक विकारों की दियासिलाई से जलाकर नष्ट कर रहे हैं । हाय! हम अपने पाँव में अपने आप कुल्हाड़ी मारने का यह भयानक खेल क्यों खेल रहे हैं? अपनी चिता के लिए अपने आप लकड़ियाँ क्यों इकट्ठी कर रहे हैं? .....(सावित्री कुण्डलिनी तन्त्र 4.89)

आत्मा की चार अवस्थाएं तथा उनके स्थान व कार्य-

स्वरूपव्याप्तरूपस्य ध्यानं कैवल्यसिद्धिदम् ।याममात्रं वासुदेवं चिन्तयेत्कुम्भकेन यः॥१४८॥ सप्तजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति योगिनः । नाभिकन्दात्समारभ्य यावद्धृदयगोचरम् ॥१४९॥ जाग्रद्वत्तिं विजानीयात्कण्ठस्थं स्वप्रवर्तनम्।सुषुप्तं तालुमध्यस्थं तुर्यं भ्रूमध्यसंस्थितम् ॥१५०॥

योगी को कैवल्य की प्राप्ति अपने अन्त:करण में संव्याप्त परमात्मतत्त्व के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करने से होती है। इस प्रकार एक प्रहर तक कुम्भक करते हुए जो योगी परब्रह्ममय वासुदेव का ध्यान करता है, उसके सात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

1.नाभिकेन्द्र से लेकर के हृदयप्रदेश तक जाग्रत् अवस्था का क्षेत्र है |

2.स्वप्नावस्था कण्ठ में |

3.सुषुप्तावस्था तालु के मध्य में |

4.तुर्यावस्था भृकुटियों के मध्य में प्रतिष्ठित है |

(आज्ञा चक्र के प्रज्ञा, शील, सदज्ञान आदि गुणों के शुद्ध होनें पर प्राण की गति हृदय कि ओर सहज ही होने लगती है | यहाँ पर आत्मा की अनुभूति होती है और किसी प्रकार के संकल्प नहीं रहने से आत्मा ब्रह्म तत्व यहीं पर प्राप्त कर लेता है और प्रज्ञा स्थिर करके कर्म भी करता है कैवल्य के लिए हृदय से ब्रह्म नाड़ी सहस्रार में खुलती है और योगी मुक्त हो जाता है |)

तुर्यातीतं परं ब्रह्म ब्रह्मरन्ध्रे तु लक्षयेत् । जाग्रद्वत्तिं समारभ्य यावद्ब्रह्मबिलान्तरम् ॥१५१॥ तत्रात्मायं तुरीयस्य तुर्यान्ते विष्णुरुच्यते । ध्यानेनैव समायुक्तो व्योम्नि चात्यन्तनिर्मले ॥१५२॥ सर्यकोटिद्यतिधरं नित्योदितमधोक्षजम् । हृदयाम्बुरुहासीनं ध्यायेद्वा विश्वरूपिणम् ॥१५३॥

तुरीयावस्था का क्षेत्र ब्रह्मरन्ध्र में परब्रह्म की ओर लक्ष्य करके स्थित रहता है। जाग्रत् अवस्था से शुरू होकर ब्रह्मरन्ध्र तक तुरीयावस्था का आत्मतत्त्व प्रतिष्ठित रहता है,

उसके अन्त में वह विष्णु के नाम से कहा गया है। तत्पश्चात् योगी-साधक को अत्यन्त निर्मल स्वच्छ आकाश में कमल रूपी हृदय में आसीन कोटि-कोटि सूर्य के सदश प्रकाश से युक्त नित्य विश्वरूप विष्णु का निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिए॥१५१-१५३॥

अनेकाकारखचितमनेकवदनान्वितम् । अनेकभुजसंयुक्तमनेकायुधमण्डितम् ॥ १५४॥

नानावर्णधरं देवं शान्तमुग्रमुदायुधम् । अनेकनयनाकीर्णं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१५५॥

ध्यायतो योगिनः सर्वमनोवृत्तिर्विनश्यति । हृत्पुण्डरीकमध्यस्थं चैतन्यज्योतिरव्ययम् ॥१५६॥ कदम्बगोलकाकारं तर्यातीतं परात्परम् । अनन्तमानन्दमयं चिन्मयं भास्करं विभुम् ॥१५७॥ निवातदीपसदशमकृत्रिममणिप्रभम् । ध्यायतो योगिनस्तस्य मुक्तिः करतले स्थिता ॥१५८॥

उन अनेक आकार-प्रकार वाले, अनेक मुखों से युक्त, अनेक भुजाओं से संयुक्त, अनेकों आयुधों से मण्डित. विभिन्न वर्गों को धारण किये हुए, देवस्वरूप, शान्त, उग्र, अनेक आयुधों को धारण किये हुए, अनेक नेत्रों से सम्पन्न कोटि-कोटि सूर्यों की प्रभा से सम्पन्न विश्वस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु का चिन्तन-मनन करने से योगी की समस्त मनोवत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं । हृदय-कमल के मध्य स्थल में प्रतिष्ठित चैतन्यमय, ज्योतिस्वरूप, अव्यय, कदम्ब के सदृश गोलाकार, तुर्यातीत, परात्पर, अन्तरहित, आनन्दमय, चिन्मय, प्रकाशमान, विभु, निर्वात स्थल में स्थित दीपक की भाँति अकृत्रिम मणि की कान्ति से युक्त परब्रह्म का ध्यान करने से 'मुक्ति' योगी के करतलगत स्थित रहती है ।। १५४-१५८ ॥-त्रिशिखीब्रह्मणोपनिषद-148 से 158

साधना की सफलता सूक्ष्म जगत के ऋषियों की सहमति पर निर्भर-पूज्य गुरुदेव कह रहे थे

‘’ गायत्री-साधना के संदर्भ में अनेक लोग समझते हैं कि इसे एक वर्ण विशेष ही कर सकता है। जब महामना मदनमोहन मालवीय जी ने हमें गायत्री मंत्र की दीक्षा दी । तो वे हमसे बोले कि गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु है। ।

हमारे साधना कक्ष में आकर हमारा मार्गदर्शन करने वाली हमारी गुरुसत्ता ने हमें समझाया कि ब्राह्मणत्व, जन्म से नहीं, जीवन-साधना से प्राप्त किया जाता है। यह मानवता का सर्वोच्च सोपान है। इस साधना की ओर उन्मुख होने वाले क्षत्रिय विश्वामित्र और शुद्र ऐतरेय भी ब्राह्मण हो जाते हैं |जबकि इस साधना से विमुख होने वाले अजामिल और धुंधकारी पतन को प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण वह है, जो समाज से कम-से-कम लेकर उसे

अधिकतम दे। स्वयं के तप, विचार और आदर्श जीवन के द्वारा अनेकों को सुपथ पर चलना सिखाए।"

पूज्य गुरुदेव अभी गायत्री-साधना के मर्म को वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में समझा रहे थे। वे आगे बोले-"बेटा! गायत्री साधक का जीवन क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं, बल्कि समाज के संरक्षण के लिए सुरक्षित होना चाहिए। इस आड़े वक्त में संस्कृति, गायत्री साधकों को पुकारती है। ऐसे साधकों को पुकारती है, जिनके मन में आदर्शवादिता के लिए इतना दरद हो कि वे अपनी वासना, तृष्णा को त्यागकर अध्यात्म की प्राण रक्षा के लिए लग सकें। यह जो कलियुग दिखाई पड़ता है, यह लोगों की मानसिक गिरावट से आया है। स्वार्थ और संग्रह की वृत्ति ने प्रत्येक के अंदर के पशु को जगा दिया।मनोविकारों को दूर करने की सामर्थ्य गायत्री साधकों के भीतर है।"

पज्य गुरुदेव आगे बोले-

"इसे तो बेटा।साधना का सिद्धांत कहा जा सकता है।जब ऐसे चिंतन वाले साधक निरंतर साधनाएँ करेंगे तो वैसे वातावरण का निर्माण होगा जिसमें कुछ गंभीर साधनाए का जा सकेंगी।वातावरण बने तब तुम लोग गंभीर साधनाएँ करना।अब तो सूर्य का ध्यान, गायत्री जप, प्राणायाम-बस, इतना भर तुम करते रहो और सबको बताते रहो।समय आने पर ग्रंथिबेधन से लेकर चक्रजागरण, पंचकोशी साधना से लेकर कुण्डलिनी जागरण आदि पहले बताई गई मेरी समस्त साधनाएँ तुम्हारे लिए सरल होती जाएँगी।वैसे मैं ये सब लिखकर जा रहा हूँ, सारी साधना पद्धतियों को मैंने समय के अनुसार बदलकर लिख दिया है, लेकिन लोग इनको कर तभी पाएँगे जब सूक्ष्मजगत की ऋषिसत्ताएं ऐसा चाहेंगी।"
इतना कहकर पूज्य गुरुदेव ने अपनी।वाणी को विराम दिया।अखण्डज्योति जून 2018,पेज-26

गुप्त भाव से जप का फल-

अति संगुप्तभावेन ईप्सितं प्राप्यते फलम् । देव दानव गन्धर्वैरन्यैरपि महामते||

यथा न शायते कैश्चितथार्चां त्वं कुरुष्व मे।सर्वायद्भयःपरित्राणं कारष्यामि चते सदा ॥

भगवती वेद जननी ने कहा -"अत्यन्त गुप्तभाव से पूजा करने पर अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है | देव-दानवादि अन्य सभी को पूजा करने पर फल की प्राप्ति होती है- इसमें सन्देह नहीं है । जिसको दूसरा मनुष्य न जान सके, उसी भाँति मेरी पूजा करो । ऐसा करने पर सभी आपदाओं से मैं रक्षा करूंगी।" - **गायत्री महाविद्या का तत्व दर्शन-5.19**

उन्नति के लिए प्रयत्न और परिश्रम की आवश्यकता-

उन्नति का सबसे बड़ा आधार परिश्रम अथवा पुरुषार्थ है | संसार में असंख्य विभूतियाँ भरी पड़ी है |

"यों के विकास के द्वारा मनुष्य हैं । सुखी और समृद्ध बनाने वाले साधन हर जग हैं। पारस्परिक सहयोग, ज्ञान-प्राप्ति, अध्यवर सव्यवहार, आत्मिक-शक्तियों के विकास के द्वारा इनको प्राप्त करके मनचाही उन्नति कर सकता आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम इनके लिये अपनी हार्दिक आकांक्षा और योग्यता का प्रमाण दे सकें इन बातों को हम परिश्रम शीलता द्वारा ही प्राप्त कर सकते कहते हैं |

सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में दुहा जाता है । उद्योगी पुरुष सिंहों के यहाँ लक्ष्मी का निवास होता है। पुरुषार्थियों के गले में विजय की वरमाला पहनाई जाती है। प्रतियोगिता में जो जीतते हैं, वे पुरस्कार पाते हैं । परीक्षा में उत्तीर्ण हुए छात्र ही प्रमाण-पत्र प्राप्त करते हैं । प्राचीन समय में स्वयंवरों की प्रथा थी, युवतियाँ उन्हीं वरों को चुनती थीं जो उनकी दृष्टि में अधिकारी ठहरते थे। उन्नति की देवी भी स्वयंवर प्रथा की अनुगामिनी है, अधिक पुरुषार्थी ही उसके चुनाव में आते हैं। पात्रता का दूसरा नाम परिश्रम है । परिश्रम एक उत्पादक शक्ति है, जिससे वस्तुएं पैदा होती है।

संघर्ष में से जीवन की उत्पत्ति होती है। नाड़िया में खून दौड़ रहा हो और फेंफड़ों में वायु का आवागम जारी हो तो समझना चाहिए कि जीवन मौजूद है । अगर खून ने दौड़ना बन्द कर दिया हो या सांस का चलना रुक गया हो तो कहा जा सकता है कि इसकी मृत्यु हो गई | यदि यह जीवन कायम रखने वाली गति मन्द या शिथिल दिखाई पड़ रही हो तो चतुर वैद्य कह देते हैं कि अब जीवन दीप बुझना ही चाहता है। जो लोग परिश्रमी हैं सदा काम में जुटे रहते हैं, वे जीवित हैं, उनका जीवन जागृत है, पर जिनको काम देख कर डर लगता है, परिश्रम देखकर हंस रोता है वे मरे हुए हैं, उनकी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती। वे जीवित मृतकों की भाँति केवल प्राण धारण किए रह सकते हैं।

फुरसत न मिलने का बहाना बहुत ही झूठा बहाना है। जिस विषय में मनुष्य की दिलचस्पी हो उसके लिए वह जरूर ही थोड़ा-बहुत समय निकाल सकता है । चौबीस घण्टों में से आराम के आठ घण्टे छोड़कर सोलह घण्टे समय बचता है। इसमें से इच्छित विषय का अभ्यास करने के लिए थोड़ा-सा समय निकाला जा सकता है। जो लोग फुरसत का बहाना करते हैं उनका भावार्थ वास्तव में परिश्रम से जी चुराना होता है । जो श्रम नहीं करना

चाहता उसके लिए कभी फुरसत नहीं, जरा-जरा से काम जो हँसते-खेलते, चलते-फिरते हो सकते हैं, वे भी उसे पहाड़ की तरह भारी मालूम होते हैं और एक ऐसा ही छोटा काम कर लेने पर वह इतनी थकान महसूस करता है मानो कोई बड़ा भारी किला फतह कर चुका हो । ऐसे लोग थोड़ा सा काम करने के बाद झंझला जाते हैं, कराहते हैं, लम्बे उसाँस भरते हैं, बेचैनी अनुभव करते हैं और बुड्डों की तरह उल्टा मुँह करके पड़े रहते हैं।

कभी शारीरिक कमजोरी के कारण, मनुष्य की क्रिया शक्ति कुण्ठित हो जाती है और थोड़े से परिश्रम से थकान आ जाती है। उसकी चिकित्सा करना उचित है परन्तु अधिकांश व्यक्ति शारीरिक निर्बलता से नहीं, वरन मानसिक निर्बलता से ग्रसित होते हैं । शारीरिक कमजोरी की अपेक्षा मन की कमजोरी के कारण शक्तियाँ अधिक कुण्ठित होती हैं । जिनका मन परिश्रम में रस लेता है, उन्हें फुरसत न मिलने की शिकायत नहीं करनी पड़ती । वे अनेक झंझटों और कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपने प्रिय काम में जुटे रहते हैं,

लक्ष्मी उनके यहाँ निवास करती है जो उद्योगी पुरुष सिंह हैं । जो पुरुष अपनी उद्योग परायणता और परिश्रमशीलता को खो बैठता है, वह लक्ष्मी का प्रिय पात्र नहीं बन सकता, संपदाएँ उसके यहाँ ठहर नहीं सकतीं । अकर्मण्यता दरिद्रता की सहेली है । जहाँ अकर्मण्यता रहेगी वहाँ किसी न किसी प्रकार दरिद्रता जरूर पहुँच जायेगी।

प्राचीन समय में हमारे पूजनीय पूर्वज श्रम परायणता का महत्व भली प्रकार समझते थे, इसलिए उन्होंने इसे पनीत धार्मिक कृत्यों में बहुत ऊँचा स्थान दिया है।

आध्यात्मिक साधना में उसकी प्रमुख स्थापना की है। 'तपश्चर्या' यह शब्द धार्मिक जगत में बड़े आदर के साथ उच्चारण किया जाता है। 'तपस्या' शब्द हमारे हृदय में आदर एवं श्रद्धा का संचार करता है। तपस्वी व्यक्ति के लिए हमारा मस्तक सहज ही श्रद्धा से नत हो जाता है । यह तपस्या क्या है ? श्रेष्ठ, उचित एवं उन्नतिशील कार्यों के लिए परिश्रम करना और उस मार्ग में जो कष्ट आते हों उन्हें सहन करना, यही तपस्या की परिभाषा है । ऋषि-मुनियों का जीवन तपस्यामय होता था, वे तपश्चर्या की साधना में पर्याप्त समय लगाते थे। विद्या से भी अधिक, ज्ञान से भी अधिक, तपस्या को महत्व दिया जाता था क्योंकि विद्या और ज्ञान से मस्तिष्क का विकास तो होता है, पर वह चेतना उत्पन्न नहीं होती, जिसके द्वारा उस मस्तिष्क के विकास को कार्य रूप में

परिणत किया जा सके, जीवन व्यवहार में लाया जा सके। जिसे कठोर परिश्रम का अभ्यास है वह ही अपने उन्नतिशील विचारों के अनुसार आचरण कर सकता है।

स्वभावत: ऊपर चढ़ने में अधिक परिश्रम पड़ता है। सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर की मंजिल पर पहुंचने वाले एवं पर्वतों के शिखर की ऊँची यात्रा करने वाले जानते हैं कि उनके पैरों को समतल भूमि पर चढ़ने की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता है। जिनके पैर इस अधिक कार्य' का बोझ उठाने को तैयार न हों वे ऊँचे स्थान पर पहुँचने का आनन्द नहीं लूट सकते । ऊपर से नीचे फिसल पड़ना सरल है, दो सौ फीट ऊँची दीवाल पर से कोई व्यक्ति गिरे तो दो चार सैकिण्ड में ही बिना हाथ-पैर हिलाये उस रास्ते को पार करके जमीन पर आ गिरेगा परन्तु उतनी ऊँचाई तक चढ़ने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ेगी । जीवन को अवनति के गड्ढे में पटक देने वाले कुविचार आसानी से क्रिया रूप में आ जाते हैं, पर ऊँचे उठाने वाले, उन्नति की ओर ले जाने वाले, मार्ग पर चलने में काफी प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ता है, बाधाओं से काफी संघर्ष लेना पड़ता है, तब कहीं जाकर सफलता मिलती है । इसलिए ऊँचा चढ़ने की साधना का तपश्चर्या से अनन्य सम्बन्ध है। जिसमें तप करने की वृत्ति नहीं उसके लिए आत्मिक या भौतिक, भीतरी या बाहरी किसी प्रकार की उन्नति करना कठिन है।

परिश्रम यदि विवेक और व्यवस्था के साथ उचित दिशा में किया जाय तो उसका परिणाम आश्चर्यजनक होता है। संसार में जो भी महानतम कार्य हुए हैं वे मनुष्य के परिश्रम की अद्भुत शक्ति की गवाही दे रहे हैं । शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम दोनों ही अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं । दोनों के सम्मिलन से एक पूर्ण परिश्रम का निर्माण होता है । जैसे दो पहियों के बिना रथ अपूर्ण है, जैसे स्त्री-पुरुष बिना गृहस्थ अपूर्ण है, वैसे ही अकेला शारीरिक या अकेला मानसिक श्रम अपूर्ण है ।

-गायत्री साधना का गुह्य विवेचन-5.159

साधना की पाँच शर्तें

अत: स्वस्थेन चित्तेन श्रद्धया निष्ठयां तथा। कर्तव्याविरतं काले नित्यं गायत्र्युपासना।

इसलिए श्रद्धा से, दृढ़ता से तथा स्वस्थ चित्त से, प्रतिदिन, निरन्तर, समय पर गायत्री की उपासना करनी चाहिए। **(वाङ्मय-12, 8.13)**

1. आसन शुद्धि-

गीता के 6 वें अध्याय के 11वें शोक में भगवान ने आसन कैसा हो, लिखा है

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमश: कुशा, मृगछाला (आज के समय मे हिंसा रहित चर्म उपलब्ध होना सम्भव नहीं है, उसके स्थान पर भेड़ के ऊन का आसन उचित होगा) और वस्त्र मे रेशम बिछायें, जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके बैठे।

आसन शुद्धि के लिए दोनों हाथों से आसन को स्पर्श करते हुए आसन शुद्धि की भावना करते हुए निम्न मन्त्र बोलकर बैठे।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेतपुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।

ॐ पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

2. ब्रह्मसंध्यावन्दन

आचमनं शिखाबंधः प्राणायामोऽध्मर्षम्। न्यासश्चोपासनायां तु पंच कोषा मता बुधैः ।

आचमन, चोटी बाधना, प्राणायाम, अघमर्षण और न्यास ये पाँच कोष विद्वानों ने गायत्री सन्ध्या की उपासना में स्वीकार किये हैं। (गायत्री महाविज्ञान-201)

(1) आचमनम्- वाणी, मन तथा अन्तःकरण की शुद्धि के लिए जल का पान करें।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।

ॐ सत्यं यशः श्रीमयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा।

(2) शिखावन्दनं- शिखा के मध्य में प्रज्ञा की स्थापना तथा सदुपयोग की वृत्ति जागृत होने की भावना करते हुए शिखा वंदन करें।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते। तिष्ठ देवि शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे।

(3) प्राणायामः- प्राणमय कोष के जागरण तथा सदुपयोग की अवस्था बनने की श्रद्धा भावना के साथ प्राणायाम।

प्राणायामः परं तपः । प्राणायाम ही परम् तप है। (मनुस्मृति 2/83)

प्राणायामे जपन् लोक गायत्री ध्रुवमाप्नुते। निग्रहं मनसश्चैव इन्द्रियाणां हि सम्पादाम् ॥ 78॥

मनुष्य निश्चय पूर्वक प्राणायाम सहित गायत्री को जपता हुआ मन का निग्रह और इन्द्रियों की सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

मन्त्र विभज्य भागेषु चर्तुषं सुबुधस्तदा। रेचकं कुम्भकं बाह्य पूरकं कुम्भकं चरेत्।।79॥

बुद्धिमान व्यक्ति मन्त्र को चारों भागों में विभक्त करके, तब रेचक, कुम्भक, पूरक और बाह्य कुम्भक को करें।-गायत्री संहिता (गायत्री महाविज्ञान पृ.सं.205)

मन्त्रः- ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः, ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भवः स्वः ॐ।

(4)अघमर्षणम्- पाप नाश करने की प्रक्रिया प्रणव मुद्रा से -

विनियोग - ॐ अस्य अघमर्षण सूक्तस्य अघमर्षण ऋषि अनुष्टुप छन्दो भाव वृत्तो देवता अघमर्षणे जपे विनियोगः ।

मन्त्रः

1.ॐ ऋतञ्च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत । ततः समुद्रो अर्णवः।

2.समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।

3.सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं च अन्तरिक्षमथो स्वः।

ऋग्वेद-10/190/1-3

(अ) दाँई नासिका से श्वास लेते हुए विष्णु ग्रन्थि में सद्भाव जागृत, बाँई नासिका से निकालते हुए दुर्भाव समाप्त ।

(ब) दाँई नासिका से श्वास लेते हुए ब्रह्म ग्रन्थि में सद्ज्ञान जागृत, बाँई नासिका से श्वास निकालते हुए दूषित ज्ञान समाप्त।

(स) दाँई नासिका से श्वास लेते हुए रुद्र ग्रन्थि में सद्प्राण जागृत, बाँई नासिका से निकालते हुये दूषित प्राण समाप्त।

(5) न्यासः- निर्दिष्ट अंगों में दैवीय शक्तियों की स्थापना की भावना करते हुए बाएँ हाथ से दाएँ अंगों का स्पर्श करते हुए सदुपयोग करने की भावना की जाएँ।

ॐ वाङ्मे आस्येऽस्तु। (मुख को)

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु। (नासिका के दोनो छिद्रों को)

ॐ अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु। (दोनों नेत्रों को)

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को)

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों भुजाओं को)

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। (दोनों जंघाओं को)

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि, तनूस्तन्वा मे सहसन्तु। (समस्त शरीर पर)

(6) पृथ्वीपूजनम्-अक्षत-पुष्प तथा जल धरती माता को अर्पित कर श्रद्धा पूर्वक नमन वंदन करें।

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका, देवि! त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम्॥

-भविष्यमध्यम पूर्व २.२०२३-२४

3. तिलक धारणम्

(अ) अनामिका अंगुली से रोली ललाट (आज्ञा चक्र) में प्रसन्न मन से नीचे से ऊपर की ओर धारण करते हुए भावना करें कि प्रज्ञा जागृत हो रही है तथा सदुपयोग के अनुकूल बन रही है।

चन्दन धारणं - ॐ चन्दनस्य महत्पुण्य, पवित्रं पापनाशनम् । आपदा हरते नित्य, लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा।

(ब) तिलक के ऊपर अक्षत धारण करते हुए दृढ़ भावना करें कि अखण्ड प्रज्ञा सदुपयोग के लिए स्थिर है।

ॐ अक्षन्नमीमदन्त वव, प्रियाऽ अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा, नविष्ट्या मती योजान्विचन्द्र ते हरी॥ - भृ. ३.५१

दीपदाननियमः

दीपक प्रज्वलित करने का महत्व-

1.दीप-विचार-शारदातिलक में लिखा है-

कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा। आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैःसौरभशालिनः॥

कपूर की बत्ती, घी की बत्ती अथवा तिलतेल की बत्ती दीपक में डालकर दीपक अर्पित करना चाहिये।

2. कालिकापुराण में कहा है

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्। घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः॥

ज्वालयेन्मुनिशार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः। कार्पासवर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मिका॥

-देवताओं के लिए दीपक में घी और तैल का मिश्रण नहीं करना चाहिये। भगवान् के लिए या तो नित्य घी का दीपक प्रज्ज्वलित करना चाहिये अथवा तिल तेल का दीपक प्रज्ज्वलित करना चाहिये। रूई की बत्ती बहुत छोटी और अधिक बड़ी नहीं होनी चाहिये।

3.आह्निकतन्त्र में कहा है-

सर्वंसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम्। अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च॥

यद्यपि पृथ्वी सब कुछ सहन करती है; किन्तु वह दो बातों को सहन नहीं करती-बिना कारण के उस पर पैरों का आघात तथा दीपक की उष्णता ।

4. कालिकापुराण में कहा है-

सुवृत्तवर्तिसस्नेहपात्रेऽभग्ने सुदर्शने । मृन्मये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात्प्रयत्नतः॥

तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम् । तृणध्वजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते॥

नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम्। दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्॥

अच्छी बत्ती बाँटकर तेल डालकर बिना टूटे-फूटे पात्र में दीपक बनाकर अथवा मिट्टी के दीपक में वृक्षकोटर में दीपक रखना चाहिये। तैजस धातु, लकड़ी, लोहा, मिट्टी, नारियल अथवा तालवृक्ष से दीपपात्र का निर्माण प्रशस्त होता है। दीपक को सदैव दीपाधार पर रखना चाहिये। देवता के लिए जलाए हुए दीपक को कभी बुझाना नहीं चाहिये। दीप का हरण करने वाला अन्धा होता है तथा उसे बुझाने वाला काना होता है ।

5. वाराहपुराण में कहा है-

दीपं स्पृष्ट्वा तु यो देवि मम कार्याणि कारयेत् । तस्यापराधाद्वै भूमे पापं प्राप्नोति मानवः॥

हे देवि! जो दीपक का भूमि पर स्पर्श करके कार्य को आरम्भ करता है, उसके उस अपराध से उसे पाप लगता है अर्थात् दीपक को कभी भूमि पर नहीं रखना चाहिये। दीपक से भूमि उष्ण नहीं होनी चाहिये, इस प्रकार से दीपक को रखे।

6.दीपमहिमा

पुरश्चरणकृत्ये च दीपं भैरव।दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः॥

शुण्विह चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद्दीपैर्यजेच्छ्रिये॥

हे भैरव! पुरश्चरण कृत्य में जो दीप को प्रज्वलित करता है, वह लोकों को जीत लेता है। दीपक तेजोमय तथा चतुर्वर्ग को देनेवाला है।

7.विष्णुधर्मोत्तर में कहा है-

यावदक्षिनिमेषाणि दीपो देवालये ज्वलेत्। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

जितने अक्षिनिमेषों तक देवालय में दीप जलता है. उतने ही सहस्र वर्षों तक दीपदानकर्ता स्वर्गलोक में निवास करता है।

8.दीपक रखने के लिए दिशा का निर्धारण वामन के अनुसार-

दीपं घृतयुतं रक्षेत्तैलयुक्तं च वामतः । दक्षिणे च सितां वर्तिं वामतो रक्तवर्तिकाम्॥

घी का दीपक देवता के दाहिनी ओर तथा तिल तेल का दीपक बाँईं ओर रखना चाहिये। कपूर की बत्ती को दाहिनी ओर तथा लाल बत्ती को वाम भाग में रखें।

नोट- देवी के किए उक्त के विपरीत होना चाहिए | अर्थात गायत्री माता के लिए अपने दहीने घी और अपने बाएं तैल का दीपक प्रज्जवलित करना चाहीये |

पुरानी या जाली हुई बत्ती बदल दें | आजकल पीतल के दीपक में लम्बी बत्ती डाली जाती है जिसमें चिमटी से खिच कर छोटी कैंची से काटकर निकाल लेना चाहिए पूरा फेकनें से बच जा सकता है|

अगरबत्ती अपनें दाहिने रखें |

9.दीप स्तुति- प्रथम दीप प्रज्वलित हो या प्रथम दीप दर्शन हो तो प्रार्थना करें ।

ॐ शिवंभवतु कल्याणं, आरोग्यं सुख सम्पदाः। मम बुद्धिप्रकाशाय, दीपोज्योतिर्नमोऽस्तुते ॥

..... (वाङ्मय12,11.6)

4. देव आवाहनम्- विराट से आवश्यक देवी-देवताओं का आवाहन करें।

⁕ गुरु आवाहन (ब्रह्मचक्र में)- मार्गदर्शन संरक्षण तथा परिमार्जन हेतु गुरु का आवाहन करें।

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुरेव महेश्वरः । गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।

मातृवत् लालयित्री च, पितृवत् मार्गदर्शिका। नमोऽस्तु गुरुसत्तायै, श्रद्धा प्रज्ञायुता च या॥

ॐ श्री गुरवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

⁕ गायत्री आवाहन (विष्णु ग्रंथि में)- हृदय में गायत्री के कुछ प्रमाण

(क)-

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गलोकम्। -छा०३/१३/६

हृदय चैतन्य ज्योति गायत्री रूप ब्रह्म के प्राप्ति स्थान के प्राण, व्यान, अपान, समान, उदान ये पाँच द्वारपाल हैं।अत: इन्हीं को वश में करे, जिससे हृदयस्थित गायत्री स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो।उपासना करने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त होता है और उसके कुल में वीर पुत्र या शिष्य उत्पन्न होता है।

(ख)-

रेतःशोणितसंयोगं यदा गर्भः प्रजायते। किञ्चिदात्मा यदा तस्मिन् जीवभावः प्रपद्यते|तत्क्षणाच्चैव गायत्री जीवात्मना सह जायते| जीवव्यक्तिस्तत्र आत्मा कला श्रीरन्तरात्मनः|गायत्री परमा विद्या तत्र एकत्र तिष्ठति ।गायत्री ब्रह्मणस्तत्र कला श्रीः परमात्मनः| जीवात्मा तत्र संप्राप्य गायत्री तस्वरूपिणीम् ।जीवात्मा चैव गायत्री एकत्र तत्र तिष्ठति । हे परस्य ब्रह्मणो देवि तत्रैव ह्यनिशं स्थितिः।ब्रह्मविद्यामयो जीवो ज्ञानात्मसहितः सदा| ब्राह्मणः कथ्यते तेन मुनिभिस्तन्त्रकोविदैः एवं तत्त्वमयो भद्रे क्षत्रियो वैश्य एव च| शूद्र विद्यते तत्त्वं गायत्र्यक्षरसंयतम् ।रूपादितत्त्वसयुक्तं गायत्र्यक्षरवर्जितम् ।वामा धर्मप्रदा बिन्दुर्ज्येष्ठा अर्थप्रदा तथा|रौद्री कामप्रदा बिन्दुः श्रीबिन्दुर्मोक्षदायिनी|महेशवदनं बिन्दुः श्रीविष्णोर्हृदयं तथा।समनुःपरमाराध्या संयुक्ता ब्रह्मबिन्दुना ।-गायत्री तन्त्रं-२/५३-५८,१/२०३,२०४

जिस समय रेतस और शोणित के संयोग से गर्भ स्थित होता है, उस समय वह जीव कहलाता है। उसी समय गायत्री जीवात्मा के साथ सम्बन्धित होती है । उस स्थान पर जीव व्यक्ति एवं अन्तरात्मा की श्रीरूप कला ही आत्मा है | उसी स्थान में परमा विद्यारूप गायत्री निवास करती है। ब्रह्मा एवं परमात्मा की कला श्रीरूप से रहती है | तत्व रूप गायत्री को प्राप्त कर जीवात्मा रहता है, तभी जीवात्मा और गायत्री एक ही स्थान में रहते हैं | उसी स्थान में परब्रह्म की निरन्तर स्थिति रहती है। ज्ञानात्मा के साथ यह ब्रह्म विद्यामय जीव निरन्तर निवास करता है| इसी से मुनिगण उसे ब्राह्मण कहते हैं। उसी प्रकार क्षत्रिय एवं वैश्य में भी तत्वमय ब्रह्म निवास करता है । गायत्री वर्ण से युक्त तत्त्व शूद्र में नहीं रहता । उस स्थान में तो गायत्री वर्ण से रहित रूपादि तत्त्व रहता है| वामा बिन्दु धर्म प्रदान करने वाली, ज्येष्ठा बिन्दु अर्थ (धन) प्रदान करनेवाली एवं रौद्री बिन्दु समस्त काम को देनेवाली तथा श्री बिन्दु मोक्ष को प्रदान करनेवाली है । वह बिन्दु ही महेश का मुख एवं श्रीविष्णु का हृदयरूप ब्रह्मस्वरूप मनु के सहित परम आराध्या गायत्री है |

(ग)- प्रपंचसार तंत्र में आत्मा का स्थान हृदय से गायत्री और सप्त ग्रहों का निर्माण:

एवमेषा जगत्प्रसूतिः सवितेत्यभिधीयते ।यदा तदैति स्वैस्तत्त्वैश्चतुर्विंशतिधा भिदाम् ॥23॥

तद्वर्णभिन्ना गायत्री गायकत्राणनाद् भवेत्।सप्तग्रहात्मिकाः प्रोक्ता यदेयं सप्तभेदिनी ॥24॥

तदा स्वरेशः सूर्योऽयं कवर्गेशस्तु लोहितः। चवर्गप्रभवः काव्यष्टवर्गाद् बुधसम्भवः ॥25॥

तवर्गोत्थः सरगरुः पवर्गोत्थः शनैश्चरः।यवर्गजोऽयं शीतांशुरिति सप्तगुणा त्वियम् ॥26॥

संसार को जन्म देने वाली यह हृल्लेखा जब अपने प्रकृति, महद तथा अहंकार तत्वों के साथ 24 भागों में परिणत हो जाती है, तब यह सृष्टि की जननी होने के कारण साविता कही जाती है । भूर्भुवादि चौबीस वर्गों के रूप में परिणत हृल्लेखा शक्ति अपने गायकों की रक्षा करने के कारण गायत्री कही जाती है।

जिस प्रकार स्वरों से अतिरिक्त शेष कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग तथा यवर्ग नामक छह वर्गों का कोई अन्य कारण नहीं है, अर्थात् इनका जन्म स्वरों से ही हुआ है, उसी प्रकार मंगल आदि छह ग्रहों का सूर्य के अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं है, सभी ग्रह सूर्य के ही कार्य है।

यह गायत्री शक्ति सात भागों में विभक्त होकर सप्तग्रहात्मिका बनती है। मातृकारूपिणी यह हृल्लेखा शक्ति सात भागों में विभक्त होकर सूर्य, सोमादि सात ग्रहों का स्वरूप

बनती है । सप्तग्रहस्वरूपा बनने पर सोलह स्वरों(अ से अ) से सूर्य, क वर्गसे मंगल, च वर्ग से शुक्र, ट वर्ग से बुध, त वर्ग से बृहस्पति, प वर्ग से शनि तथा य वर्ग से सोम (चन्द्र) को जन्म देती है |

गायत्री मंत्र सांप्रदायिक (communal) नहीं-

तमिलनाडू की राजनैतिक पार्टी द्रविड़कडगम ने मद्रास हाइकोर्ट मे एक याचिका प्रस्तुत की कि सन 1983 में सार्वजनिक क्षेत्र की एक संस्था यूनाइटेड ऐश्योरेंस कंपनी ने अपने दिवाली संबंधी शुभकामना कार्ड में गायत्री मंत्र और उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करके सांप्रदायिकतापूर्ण कार्य किया है । दावे के अनुसार उस कंपनी ने 25 हजार रुपए के सार्वजनिक धन का उपयोग किया है । न्यायालय से प्रार्थना की गई कि सार्वजनिक क्षेत्र की इस कंपनी को आदेश दिया जाए कि वह इस प्रकार की सांप्रदायिक भावना से दूर रहे । हाईकोर्ट ने 29 अगस्त 1992 को दिए गए अपने निर्णय में कहा-

“यह मंत्र ऋग्वेद से लिया गया है जो वैदिक ज्ञान की कुंजी है । समस्त वेद सदा से ही मानवता के प्रतीक रहे है जिनका संबंध किसी भी धर्म , जाति या संप्रदाय से नहीं रहा है । न्यायधीश ने इस दावे को मानने से भी इंकार कर दिया कि गायत्री मंत्र केवल ब्राह्मणों के लिए है । उन्होने कहा कि इस प्रकार का तर्क भ्रामक एव मिथ्या है । किसी भी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा है कि यह मंत्र केवल ब्राह्मणों के लिए है। ”

मद्रास हाईकोर्ट ने अपने निर्णय में उसका ‘शब्द ब्रह्म’ के रूप में वर्णन करते हुए घोषणा की कि “गायत्री मंत्र द्वारा शुभकामना व्यक्त करना भारतीय संविधान की किसी भी धारा के विरुद्ध नहीं है।”

इस लेख को “ट्रस्ट के कानून एवं प्रबनधन” (Law and Management of Trast) नामक किताब के पेज 201 से 208 तक अंग्रेजी भाषा में विस्तार छापा गया है |

प्रकृति के अनुसार अपने को साधने के लिए भगवती गायत्री का आवाहन करें।

ॐ आयातु वरदे देवि! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि। गायत्रिच्छन्दसां मातः, ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते।

ॐ श्री गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

ततोनमस्कारं करोमि।

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता, प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजा पशु, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।मह्यम् दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।

5. सर्वदेव नमस्कार-आवाहित दैवीय शक्तियों को श्रद्धापूर्वक हृदय चक्र में मन्त्र के साथ सिर झुकाकर नमस्कार करें।

01. ॐ सिद्धि बुद्धि सहिताय श्रीमन्महागणाधिपतेय नमः।

02. ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः।

03. ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः।

04. ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः।

05. ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः।

06. ॐ मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः।

07. ॐ कुलदेवताभ्यो नमः।

08. ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः

09. ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः।

10. ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः ।

11. ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः।

12. ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।

13. ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।

14. ॐ सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यो नमः।

15. ॐ एतत्कर्म-प्रधान- श्री गायत्रीदेव्यै नमः।

16. ॐ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु।।-(कर्मकाण्ड भास्कर पृष्ठ 51)

6. देव पूजन - आत्म पूजा मैत्रेय उपनिषद् के अध्याय 2 मन्त्र 26 में कहा गया है कि वाह्य जगत की पूजा का परित्याग कर के हृदय में ही (आत्मा की) पूजा करनी चाहिए। (पंचोपचार पूजन में तत्व के स्थान से विष्णु ग्रन्थि में समर्पण करें।)

ॐ लं पृथ्वी आत्मकं गन्धं विलेपयामि। (मूलाधार से हृदय चक्र में)

ॐ हं आकाश आत्मकं पुष्पं समर्पयामि । (विशुद्धाख्य चक्र से हृदय चक्र में)

ॐ यं वायु आत्मकं धूपं आघ्रापयामि। (अनाहत से हृदय चक्र में)

ॐ रं अग्नेय आत्मकं दीपं दर्शयामि । (मणिपुर से हृदय चक्र में)

ॐ वं अमृत आत्मकं नैवेद्यं निवेदयामि । (स्वाधिष्ठान से हृदय चक्र में)

ॐ सौं सर्व आत्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।(मूलाधार से हृदय चक्र में)

-नित्य कर्म-पूजाप्रकाश पृष्ठ-117)

7. नमस्कार - हाथ जोड़कर विष्णु ग्रन्थि में हजारों बहिर्मुखी चैतन्य कल्याणकारी तत्वों का विराट के रूप में विस्तार हो रहा है, ऐसी भावना के साथ नमस्कार करें।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्वमूर्तये, सहस्त्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।

सहस्त्रनाम्ने पुरुषायशाश्वते,सहस्त्रकोटियुगधारिणे नमः।(कर्मकाण्ड भास्कर - 57)

8. गायत्री ध्यान- पंचमुखी शासन करने वाली भगवती का ध्यान मानसिक रूप से हृदय चक्र में करें।

ॐ पञ्चवक्त्रां दशभुजां सूर्य कोटि समप्रभाम् । सावित्री ब्रह्मवरदां चन्द्रकोटि सुशीतलाम्।

त्रिनेत्रां सितवक्त्रा च मुक्ताहार विराजिताम् । वराभयांकुशकशां हेम पात्राक्षमालिकाम्।

शंखचक्राब्ज युगलं कराभ्यां दधतीं पराम्। सितपंकज संस्थां च हंसारूढां सुखस्मिताम्।

ध्यात्वैवं मानसाम्भोजे गायत्री-कवच पठेत्। -(गायत्री महाविज्ञान - 246)

9. गायत्री रक्षा कवच-

मानव जीवन में वही बातें व्यवहार में आती हैं जो चेतन, अचेतन, सुपरचेतन मन में रहती हैं। सामान्य मनुष्य अचेतन मन में बैठी बातों से संचालित होता रहता है। किसी बात का अभ्यास नियमित रूप से चालीस दिन तक किया जाता रहें तो अचेतन मन में बैठकर हमारे चेतन मन व शरीर से संचालित करना शुरू कर देती है। अर्थात् जिस बात की आवश्यकता हो उस को बार-बार अभ्यास किया जाये तो केन्द्रीय नायु तन्त्र (Central Nervous System) के न्युरान्स जाग्रत होकर गुण कर्म को प्रभावित करना शुरू कर देते है। अतः गायत्री रक्षा कवच को चौबीस हजार का अनुष्ठान प्रतिदिन नियत संख्या में पाठ करने पर प्राण स्थिर होकर दैवीय शक्तियों से जुड़ जाता है, जो एक प्रकार की सिद्धि है। सिद्धियाँ स्वयं निर्धारित लक्ष्य पर स्वचालित कार्य करती रहती हैं, चेतन मन को अतिरिक्त सुरक्षा के लिए सजग रहने की जरूरत नही पड़ती है।

विनियोग- दाएँ हाथ में जल (जल की उपलब्धि नहीं होने पर भावनात्मक, मानसिक रूप

से क्रिया सम्पन्न करें) लेकर विनियोग पढ़कर धरती माता को समर्पित करें और फिर मन्त्रों का पाठ करें।

ॐ अस्य श्री गायत्री कवचस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द गायत्री देवता। ॐ भूः बीज भुवः शक्ति स्वः कीलकम् मम् मर्यादा रक्षणार्थ सहितं तत्क्षणम् प्रभावकारी सर्वपाप नाशनम्, राग द्वेष आलस्य प्रमाद अपमान तीरस्कार कटु अपवित्र सम्बन्ध कर्म प्रभाव पूर्णतः स्थायी रूपेण समापत्यर्थं मधुर पवित्र सम्बन्ध कर्म प्रभाव पूर्णतः स्थायी रूपेण संस्थापनार्थं च सत्य, न्याय, सद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतःस्थायी रूपेण परिवर्तनाय, उत्तम स्वास्थ्य प्राप्यर्थं, आध्यात्मिक उन्नति हेतवे, परिवार-लोक सेवार्थं च न्यास शक्ति कवच पाठं गायत्री प्रीतिऽर्थे जपे विनियोगः ।

न्यास शक्ति कवच- निर्दिष्ट अंगों में गायत्री की विभिन्न शक्तियाँ सुरक्षा के लिए स्थापित हो रही हैं

ॐ विश्वामित्र महाप्राज्ञ गायत्री कवचं शृणु। यस्य विज्ञान मात्रेण त्रैलोक्यं वशयेत् क्षणात्।

सावित्री मे शिरः पातु शिखायाममृतेश्वरी। ललाटं ब्रह्मदैवत्यां भ्रुवौ मे पातु वैष्णवी।

सावित्री शिर की रक्षा करें, अमृतेश्वरी शिखा की, ब्रह्म देवी ललाट की तथा वैष्णवी भ्रू (भौं का मध्य) की रक्षा करें।

कर्णौ मे पातु रुद्राणी सूर्या सावित्रीकाम्बके। गायत्री वदनं पातु शारदा दशनच्छदौ।

रुद्राणी कान की, सूर्य में रहकर सभी प्राणियों का सृजन करने वाली भगवती सावित्री दोनों नेत्रों की, गायत्री मुख की तथा शारदा ओठों की रक्षा करें।

द्विजान् यज्ञप्रिया पातु रसनायां तु सरस्वती । सांख्यायनी नासिकां मे कपोलौ चंद्रहासिनी।

द्विजों (वाणी) की यज्ञप्रिया सरस्वती वाणी की, सांख्यायनी नासिका की, चन्द्रहासिनी कपोलों की रक्षा करें।

चिबुकं वेद गर्भा च कण्ठं पात्वघनाशिनी। स्तनौ मे पातु इन्द्राणी हृदय ब्रह्मवादिनी।

ठोड़ी में वेदगर्भा, पत्वाघनाशिनी कण्ठ की, इन्द्राणी स्तनों की, ब्रह्मावादिनी हृदय की रक्षा करें।

उदरं विश्व भोक्त्री च नाभिं पातु सुरप्रिया। जघनं नारसिंही च पृष्ठं ब्रह्मांडधारिणी।

विश्वभोवत्री उदर की, सुरप्रिया नाभि की, नारसिंही जघन (जांघ) की तथा ब्रह्मांडधारिणी

पीठ की रक्षा करें।

पार्श्वौं मे पातु पद्माक्षी गुह्यं गोगोप्तीकाऽवतु । ऊवारोंकाररूपा च जान्वोः सन्ध्यात्मिकाऽवतु।

पद्माक्षी पार्श्व (बैठने का भाग) की, गोगोप्तीका गुह्य (गुदा) की, ओंकार रूपा ऊरु (पेड़ू) की तथा सन्ध्यात्मिका जानु (घुटने की) की रक्षा करें ।

जंघयोः पातु अक्षोभ्या गुल्फयोर्ब्रह्मशीर्षका। सूर्या पदद्वयं पातु चन्द्रा पादांगुलीषु च।

अक्षोभ्या जंघा की, ब्रह्मशीर्षका गुल्फ (टखना अर्थात एड़ी के ऊपर वाला भाग) की, सूर्या दोनों पैरों की चन्द्रा अंगुलियों की रक्षा करें।

सर्वांगं वेदजननी पातु में सर्वदाऽनघा।इत्येतत्कवचं ब्रह्मन् गायत्र्याः सर्व-पावनम्।पुण्यं पवित्रं पापघ्नं सर्व रोगनिवारणम्।

वेद जननी सब शरीर की, सर्वदा मेरी रक्षा करें। यह सर्वपावन ब्रह्म गायत्री कवच है, जो पुण्यकारी, पवित्रकारी, पापनाशक तथा सर्वरोग निवारक है।

त्रिसंध्यं यः पठेद्विद्वान् सर्वान्का मानवाप्नुयात्। सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स भवेद्वेदवित्तमः।

त्रिसंध्या पाठ करने से विद्वान् सब कामनाओं को प्राप्त करता है, वह सब शास्त्रों का जानकार हो जाता है। वेदज्ञ हो जाता है।

सर्व यज्ञ फलं प्राप्य ब्रह्मान्ते समवाप्तनुयात्। प्राप्नोति जपमात्रेण पुरुषार्थाश्चतुर्विधान्।

सब यज्ञों का फल उसे मिलता है। अन्त में ब्रह्म की प्राप्ति होती है और जप मात्र से ही वह चारो पुरुषार्थों को प्राप्त करता है।-(गायत्री महाविज्ञान -24)

10.शापविमोचन - शापविमोचन के विनियोग और मन्त्र भी होते हैं। जिन्हें सुविधा हो वे कर सकते हैं परन्तु यहाँ पर मोचन वाले सद्गुणों को धारण करने पर बल दिया जा रहा है। अतः उन ग्रन्थियों पर ध्यान करते हुए मानसिक उच्चारण करें |

ॐ ब्रह्माशापविमुक्ताभव: (ब्रह्म ग्रन्थि में-अज्ञान से मुक्ति)

ॐ वशिष्ठ शापविमुक्ताभव: (विष्णु ग्रन्थि में-दर्भावनाओं से मुक्ति)

ॐ विश्वामित्रशापविमुक्ताभवः (स्वाधिष्ठान चक्र में स्वार्थ परता से मुक्ति)

माला जप की विधि- माहेश्वर तन्त्र में कहा है कि

मध्यामायां-यसेत्मालाम् ज्येष्ठा आवर्तयेत् सुधीः ॥

अर्थात् मध्यमा अनामिका ऊंगली पर माला को रखकर अपने उसी हाथ के अंगूठे से माला को फेरने पर भुक्ति-मुक्ति | प्रदाज्ञेया॥ अर्थात् भुक्ति(भोग) और मुक्ति प्रदान होती है।

जप के समय हाथ की स्थिति :

हस्तौ नाभि समौ कृत्वा प्राप्तः संध्या जपंचरेत् ॥

प्रात: संध्या में माला को नाभि (मणिपुर चक्र) के आगे रखकर जप करें, मध्यांह काल में हृदय (विष्णु ग्रंथि) के समीप तथा संध्याकाल में आँखों के समीप रखकर जप करें। परन्तु अनुष्ठान के लिए मंत्रजप नाभि के सामने जप करें। नाभि के ऊपर और नासिका के नीचे सीने से चार अंगुल दूर रखें। लम्बे समय तक जप करने वाले हाथ नीचे कर, जप कर सकते हैं |

माला जप के समय सावधानियां: 1. माला सदा दाहिने हाथ में रखें। 2. माला भूमि पर न गिरे । 3.माला पर धूल न जामें। 4.माला अंगूठे, मध्यमा और अनामिका से फेरें जिसमें अनामिका और मध्यमा के माध्यम से स्थिर रखते हुए अंगूठे से अन्दर की ओर एक मन्त्र के लिए माला का एक दान खिसकाते हुए गायत्री मन्त्र का जप करते रहें । किसी और अंगुली से कभी नही फेरें। 5. मनकों पर नाखुन न लगायें। 6. माला के सुमेरु को कभी नहीं लाघें । 7.माला को गो-मुखी में सदैव रखें। 8.ध्यान देवता के मूलभाव पर रखें। 9. अपनी माला की स्वयं प्राणप्रतिष्ठा करें। 10.माला पूरी होने पर सुमेरु को ललाट तथा दोनों आँखों से स्पर्शकर पुनः प्रारम्भ करें। बार बार ऐसा करना ध्यान में बाधा लगे तो मानसिक किया जा सकता है। 11. जप के लिये अपनी ही माला प्रयोग करें। 12. माला जप करने और पहने के लिए अलग-अलग होनी चाहिए।

11. माला प्रार्थना- जप करने या पहनने से पूर्व माला की प्रार्थना करनी चाहिए, प्रार्थना मन्त्र इस प्रकार है |

जप के लिए प्रार्थना-

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुवर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मानये सिद्धिदा भव।। ॐ गं अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्यमि दक्षिणे करे। जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥ -(वाड्मय 12, 8.35)

ॐ ऐं अक्षमालिकायै नमः॥

गले में माला पहनने के लिए प्रार्थना

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । चतुवर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मानये सिद्धिदा भव।।

ॐ गं अविघ्नं कुरु माले त्वं गृहयमि दक्षिणे करे।धारणकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥ ॐ ऐं अक्षमालिकायै नमः॥

जप के बाद या गले से माला निकालने का मन्त्र-

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव। शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा।

12. सहस्त्रार में जप का महत्व-

सर्व पाप नाश के लिए गायत्री हृदयं में इस प्रकार कहा है-

प्रनावे नित्य युक्ता स्याद् व्यह्रितिषु च सप्तसु |सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते | शत्सहस्रमभ्यस्ता गायत्री पावनं महत् | गायत्री हृदयं-१३

गायत्री सदा प्रणव युक्त है उसका उच्चारण सदा ॐकार समेत होता है | यद्यपि साधारण साधना में और विवेचना में तीन ही व्याहृतियों का प्रयोग होता है, पर ब्रह्म विवेचना के लिए- उपनिषद् विज्ञान के लिए सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है|यदि सब पापों का समूह इकट्ठा हो जाये, तो भी उसका नाश सतहस्र गायत्री का अभ्यास करने से हो जाता है |

यों मोटे अर्थ में शत सहस्र को एक लाख और अभ्यास को जप कहते है, परन्तु इस सूत्र का सूक्ष्म विवेचन इस प्रकार है- शत कहते हैं निश्चित (सदगुण या ब्रह्म) भाव (इच्छा) से, सहस्र कहते हैं- सहस्रार में- ब्रह्मरन्ध्र में गायत्री की धरणा का अभ्यास करने से पाप दूर होता है |

चतुर्विंशति लक्षं वा गायत्री जप संयुतः । ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं सम्पूर्ण फल योगदम्।

जिस ब्राहण ने 24 लक्ष गायत्री जप कर लिया हो वही 'सत्पात्र' कहलाता है। उसी से फल की आशा की जा सकती है। ब्राह्मण को भूसुर अर्थात् पृथ्वी का राजा कहते हैं। उसे अपने पद और गौरव की रक्षा के लिए ब्राह्मणोचित कर्म जिसमें गायत्री उपासना प्रथम हैकरनी ही चाहिए। जो उन्हें न करके साधारण सांसारिक झंझटों में अपना जीवन नष्ट

करता है, भारी भूल करता है। यों मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है पर ब्राह्मण होना तो और भी बड़ा सौभाग्य है। जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त है वे अपनी इस देह को क्षुद्र कार्यों में न लगाकर आत्मकल्याण का मार्ग अपनावें। उपासना द्वारा आत्म-बल प्राप्त करें और संसार में धर्मवृद्धि के लिए कटिबद्ध रहें।

पातञ्जल योग दर्शन में सदगुणों का फल-

अहिंसा अर्थात प्रज्ञा का फल बतलाते हैं

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः॥३५॥

अहिंसा अर्थात प्रज्ञा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस योगी के निकट सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं।

व्याख्या-जब योगीका अहिंसाभाव पूर्णतया दृढ़ स्थिर हो जाता है तब उसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी वैरभावसे रहित हो जाते हैं। इतिहास-ग्रन्थों में जहाँ मुनियोंके आश्रमों की शोभाका वर्णन आता है, वहाँ वनचर जीवोंमें स्वाभाविक वैरका अभाव दिखलाया गया है, यह उन ऋषियों के अहिंसाभाव की प्रतिष्ठा का द्योतक है ॥ ३५ ॥

सत्य का फल बतलाते हैं

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥३६॥

सत्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर साधक में क्रियाफल के आश्रय का भाव आ जाता है ।

व्याख्या-जब योगी सत्यका पालन करनेमें पूर्णतया परिपक्व हो जाता है, उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं रहती, उस समय वह योग कर्तव्यपालनरूप क्रियाओंके फलका आश्रय बन जाता है। जो कर्म किसीने नहीं किया है, उसका भी फल उसे प्रदान कर देनेकी शक्ति उस योगीमें आ जाती है, अर्थात् जिसको जो वरदान, शाप या आशीर्वाद देता है, वह सत्य हो जाता है॥ ३६॥

चोरी के अभाव का फल बतलाते हैं

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥३७॥

चोरी के अभावकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर (उस योगी के सामने); सब प्रकारके रत्न प्रकट हो जाते हैं।

व्याख्या-जब साधकमें चोरीका अभाव पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाता है. तब पथ्वीमें जहाँ

कहीं भी गप्त स्थानमें पड़े हुए समस्त रत्न उसके सामने प्रकट हो जाते हैं अर्थात् उसकी जानकारीमें आ जाते हैं॥३७॥

ब्रह्मचर्य का फल बतलाते हैं

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः॥३८॥

ब्रह्मचर्यकी दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है।

व्याख्या-जब साधकमें ब्रह्मचर्यकी पूर्णतया दृढ़ स्थिति हो जाती है, तब उसके मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरमें अपूर्व शक्तिका प्रादुर्भाव हो जाता है, साधारण मनुष्य किसी काम में भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ३८

अपरिग्रह का फल बतलाते हैं

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः॥३९॥

अपरिग्रह अर्थात उदारता की स्थिति हो जाने पर पूर्वजन्म कैसे हुए थे? इस बातका भलीभाँति ज्ञान हो जाता है।

व्याख्या-जब योगी में अपरिग्रह का भाव पूर्णतया स्थिर हो जाता है, तब उसे अपने पूर्वजन्मों की और वर्तमान जन्मकी सब बातें मालूम हो जाती हैं अर्थात् मैं पहले किस योनि में हुआ था, मैंने उस समय क्याक्या काम किये, किस प्रकार रहा-ये सब स्मरण हो जाते हैं और इस जन्म की भी बीती हुई सब बातें स्मरण हो जाती हैं। यह ज्ञान भी संसारमें वैराग्य उत्पन्न करने वाला और जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिये योगसाधन में प्रवृत्त करने वाला है। यहाँ तक यमों की सिद्धिका जो फल बतलाया गया है, उसके सिवा निष्कामभाव से यमों का सेवन करने से कैवल्य की प्राप्ति में भी सहायता मिलती है॥ ३९॥

सम्बन्ध- अब नियमों के पालनका फल बतलाते हैं; परंतु इन सूत्रों में पूर्णप्रतिष्ठा की शर्त नहीं रखी गयी है। इससे यह मालूम होता है कि साधक इनका जितना पालन करता है, उतना ही उसे लाभ मिलता चला जाता है। सबसे पहले अगले सूत्र में

बाह्य शौच का फल बतलाते हैं

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः॥४०॥

शौचके पालनसे अपने अंगों में वैराग्य और दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा (उत्पन्न

होती है)।

व्याख्या-बाह्य शुद्धिके पालन से साधक की अपने शरीरमें अपवित्र बुद्धि होकर उसमें वैराग्य हो जाता है अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं रहती और दूसरे सांसारिक मनुष्यों के साथ संसर्ग करने की इच्छा नहीं रहती अर्थात् उनके संगमें भी प्रवृत्ति या आसक्ति नहीं रहती॥ ४० ॥

भीतर की शुद्धिका फल बतलाते हैं-

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च॥४१॥

इसके सिवा अन्तःकरणकी शुद्धि, मनमें प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्म साक्षात्कार की योग्यता-ये पाँचों भी होते हैं।

व्याख्या-मैत्री आदिकी भावनाके द्वारा अथवा जप, तप आदि अन्य किसी साधनद्वारा आन्तरिक शौचके लिये अभ्यास करनेसे राग-द्वेष, ईर्ष्या आदि मलों का अभाव होकर मनुष्यका अन्त:करण निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। मनकी व्याकुलता का नाश होकर उसमें सदैव प्रसन्नता बनी रहती है; विक्षेप-दोषका नाश होकर एकाग्रता आ जाती है और सब इन्द्रियाँ मनके वशमें हो जाती हैं, अत: उसमें आत्मदर्शन की योग्यता आ जाती है।

इस प्रकार इसके ऊपरवाले सूत्रमें तो बाह्य शौचका फल बतलाया गया है और इसमें भीतरकी शुद्धिका फल बतलाया गया है॥४१॥

भीतर की शुद्धि का फल

संतोषादनुत्तमसुखलाभः॥४२

जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है-ऐसे सर्वोत्तम सुखका लाभ होता है।

व्याख्या-संतोषसे अर्थात् चाहरहित होनेपर जो अनन्त सुख मिलता है, उसकी बराबरी दूसरा कोई सांसारिक सुख नहीं कर सकता। वह ही सर्वोत्तम सुख है॥४२॥

संतोष का फल

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः॥४३॥

तप के प्रभाव से अशुद्धिक्षयात् जब अशुद्धिका नाश हो जाता है, तब; कायेन्द्रियसिद्धिः शरीर और इन्द्रियोंकी सिद्धि हो जाती है।

व्याख्या-स्वधर्म-पालनके लिये व्रत-उपवास आदि करने या अन्य सब प्रकारके कष्ट सहन

करने का नाम 'तप' है । इसके अभ्याससे शरीर और इन्द्रियोंके मलका नाश हो जाता है, तब योगीका शरीर स्वस्थ, स्वच्छ और हलका हो जाता है तथा तीसरे पादके पैंतालीसवें और छियालीसवें सूत्रमें बतलायी हुई काय-सम्पद्प शरीर-सम्बन्धी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं एवं सूक्ष्म, दूर देश में और व्यवधान युक्त स्थान में स्थित विषयों को देखना, सुनना आदि इन्द्रिय सम्बन्धी सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है॥४३॥

स्वाध्याय का फल

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः॥४४॥

स्वाध्याय से इष्टदेवताकी भलीभाँति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है।

व्याख्या-शास्त्राभ्यास, मन्त्रजप और अपने जीवनका अध्ययनरूप स्वाध्यायके प्रभावसे योगी जिस इष्टदेवका दर्शन करना चाहता है, उसीका दर्शन हो जाता है॥४४॥

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्॥४५॥

ईश्वर-प्रणिधानसे; समाधिसिद्धिः समाधिकी सिद्धि हो जाती है।

व्याख्या-ईश्वरकी शरणागतिसे योगसाधनमें आनेवाले विघ्नों का नाश होकर शीघ्र ही समाधि निष्पन्न हो जाती है |ईश्वरपर निर्भर रहनेवाला साधक तो केवल तत्परतासे साधन करता रहता है, उसे साधनके परिणामकी चिन्ता नहीं रहती। उसके साधनमें आनेवाले विघ्नों को दूर करने का और साधन की सिद्धि का भार ईश्वरके जिम्मे पड़ जाता है, अतः साधन का अनायास और शीघ्र पूर्ण होना स्वाभाविक ही है॥ ४५ ॥

पातञ्जलयोगदर्शन- साधनपाद–२/३५-४५

जीव को आत्मा की प्राप्ति- कौशितकीय ब्राह्मणोपनिषद के अध्याय-३मन्त्र -९ में लिखा है कि-

नो एताना, तद्यथा रथस्यारेषु नेपिरर्पिती नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्रा: प्रज्ञामात्रास्वर्पिता: प्रज्ञामात्रा: प्राणेऽर्पिता: स एष प्राण एव प्रज्ञात्मानन्दोऽजरोऽमृतः। न साधुना कर्मणा भूयानो एवासाधना कनीयान् । एष होवैनं साथ कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवैनमसाधु कर्म कारयति तं यमयी निनीषते। एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेश: स म आत्मेति विद्यात्स म आत्मेति विद्यात्|..................

कौशितकीय ब्राह्मणोपनिषद-३/९

प्रज्ञा मात्रा और भूतमात्रा के स्वरूप में कोई भेद नहीं है। उसे इस तरह से जानना चाहिए, जिस प्रकार रथ की नेमि(पहिया) अरों(पहिया और धुरी को जोड़ने वाला भाग) में और अरे रथ की नाभि के आश्रित रहते हैं; उसी प्रकार ही ये समस्त भूत मात्राएँ प्रज्ञा मात्राओं में विद्यमान हैं एवं प्रज्ञा मात्राएँ प्राण में स्थित हैं। यह प्राण ही प्रज्ञात्मा, आनन्दस्वरूप, अजरअमर है। यह न तो अच्छे कर्म से वृद्धि को प्राप्त होता है और न ही बुरे कर्म से छोटा होता है । यह प्राण एवं प्रजा रूप चैतन्य युक्त परब्रह्म ही इस देहाभिमानी पुरुष से श्रेष्ठ कार्य करवाता है। वह ऐसे श्रेष्ठ कृत्य उसी से करवाता है, जिसे वह इन प्रत्यक्ष लोकों से ऊर्ध्व की तरफ ले जाना चाहता है और जिसे वह इन श्रेष्ठ लोकों को अपेक्षा नीचे ले जाना चाहता है, उससे अशुभ कार्य करवाता है। यह आत्मा समस्त लोकों का अधिपति है एवं यही सभी का स्वामी है। इन सभी श्रेष्ठ गुणों से युक्त वह प्राण ही आत्मा है, ऐसा जानना चाहिए। वह प्राण ही हमारी आत्मा है, ऐसा जानना चाहिए। वह प्राण ही हमारा आत्मा है, ऐसा ही जानना चाहिए |

गायत्री का अर्थ-

गयात्री दो शब्दों से मिलकर बना है। गय का अर्थ प्राण और त्री का अर्थ त्राण (जागरण, संरक्षण, उर्ध्वगमन) है। अर्थात-गायत्री का जप करने से प्राण की उत्पत्ति होती है। यही जप(चिन्तन) जब गुणों के लिए होने लगता है, तो आत्मतत्त्व की प्राप्ति होने लगती है। आत्मा के सन्कल्प से ही इच्छा की उत्पत्ति होती है, उसी इच्छा की पूर्ति के लिए प्राणमय कोश(कुण्डलिनी शक्ति) से प्राण का उत्पादन होता है। इस प्राण को विषय की प्राप्ति के लिए ईश्वरीय न्याय के आधार पर प्रमाणित करना होता है। यह प्राण ही संसार के समस्त वस्तुओं का निर्माण करता है। यही प्राण शरीर में गलत दिशा पकड़ने पर वात-पित्तकफ को कुपित कर देता है अर्थात् विभिन्न रोगों के रूप में यह प्राण परिवर्तित हो जाता है।

आइन्स्टीन ने E-MC2 का सूत्र दिया, किसी भी ऊर्जा को पदार्थ में और किसी भी पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है। अतः रोगों को भी ऊर्जा(प्राण) में और प्राण को पुन: आत्मा में ब्रह्मविद्या के माध्यम से बदला जा सकता है। इसी प्रकार अपनी क्षमता और पुरूषार्थ के अनुसार योग्य गुरु के मार्गदर्शन में अपने संस्कारों तथा प्रारब्धों में सुधार कर जीवन को सहज और सुगम बनाया जा सकता है। आदतों का सुधार मानवीय अहंकार का सुधार करना है।

साधना से अहंकार तक सीधी पहुँच-

अहंकार तक सीधी पहुँच साधना के अतिरिक्त और किसी माध्यम से नही हो सकती। मन और बुद्धि को शान्त, मूर्च्छित, तन्द्रित अवस्था में छोड़कर सीधे अहंकार तक प्रवेश पाना ही साधना का उद्देश्य है। गायत्री साधना का विधान भी इसी प्रकार का है। उसका सीधा प्रभाव अहंकार पर पड़ता है। गीता कहती है कि -यो यच्छ्रद्धःस एव सः, जो अपने सम्बन्ध में जैसी श्रद्धा-मान्यता रखता है वस्तुतः वैसा ही होता है। गायत्री साधना अपने साधक को दैवीय आत्मविश्वास, ईश्वरीय अहंकार(सद्गुण) प्रदान करती है। और वह कुछ ही समय में वस्तुतः वैसा हो जाता है। जिस स्तर पर उसकी आत्ममान्यता है, अपनी स्वयं की आन्तरिक सहमति है उसी स्तर पर चित्त वृतियां रहेंगी। भविष्य में वैसी आदतें, इच्छाएं, रूचियां, प्रवृतियां, क्रियाएं उसमें दीख पड़ेंगी। जो दिव्य मान्यता से ओत-प्रोत होगी।

यह साधना प्रक्रिया मानव अन्त:करण का कायाकल्प कर देती है। जिस आत्म-सुधार के लिए उपदेश सुनना और पुस्तक पड़ना विशेष सफल नही होता था, वह कार्य साधना द्वारा सुविधापूर्वक हो जाता है। यही साधना विज्ञान का रहस्य है।-गायत्री महाविज्ञान-65

गायत्री मन्त्र-

गायत्र्येव तपो योगः साधनं व्यानउच्यते । सिद्धीनां समता माता नातः किंचिद् वृहत्तरम् । गायत्री साधना लोके न कस्यापि कदापि हि ॥ याति निष्फलता मेतत् ध्रुवं सत्यं हि भूतले । योगिकानां समस्तानां साधनानां वरानने ॥ -शिव कैवल्य

"गायत्री ही तप है, योग है, साधन है, ध्यान है । वही सिद्धियों की माता मानी गई है । इससे बढ़कर श्रेष्ठ तत्व इस संसार में और कोई नहीं है । कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती । समस्त योग साधनाओं का आधार गायत्री ही है।"

गायत्री के तीन चरण हैं और २४ अक्षर । ॐकार और तीन व्याहृतियाँ मन्त्र भाग से पूर्व-शीर्ष रूप में प्रयुक्त होती हैं । इस मन्त्र गठन में अनेक विशेषताएँ और दिव्य संकेत सन्निहित हैं । अर्थ की दृष्टि से तो इस छन्द में भगवान के चार प्रधान गुणों का स्मरण है और सदबुद्धि के अन्त:करण में धारण करने का तथा दिव्य प्रेरणा की प्रार्थना भर है । यह बाल-बोध के रूप में शब्दार्थ भर हुआ । इसमें थोड़ी सी शिक्षाएँ भर दी गईं प्रतीत

होती हैं, पर गहराई में उतरने से प्रतीत होता है कि बात इतनी मात्र ही नहीं है उसके जुड़े हुए अक्षरों में से प्रत्येक शक्ति रूप है और उनमें बहुत कुछ ऐसा रहस्यमय भण्डार भरा हुआ है जिसे पाकर मनुष्य धन्य बन सकता है ।

शिक्षा की दृष्टि से गायत्री मन्त्र के प्रत्येक अक्षर में प्रमुख सद्‌गुणों का उल्लेख किया गया है और बताया गया है कि उनको आत्मसात करने पर मनुष्य देवोपम विशेषताओं से भर जाता है । अपना कल्याण करता है और अन्य असंख्यों को अपनी नाव पर बिठाकर पार लगाता है । हाड़-मांस से बनी और मल-मूत्र से सनी काया में जो कुछ विशिष्टता दिखाई पड़ती है वह उसमें समाहित सत्प्रवृत्तियों के ही कारण है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव में जितनी उत्कष्टता है वह उसी अनुपात से महत्त्वपूर्ण बनता है और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त करके जीवन सौभाग्य को हर दृष्टि से सार्थक बनाता है।(गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन- १०.१)

गायत्री महामन्त्र के २४ अक्षर केवल इसलिए नहीं हैं कि कविता की दृष्टि से आठ-आठ अक्षरों के तीन चरणवाला छन्द गायत्री माना जाता है और यह महामन्त्र 'गायत्री छन्द' भी कहा गया है, इसलिए उसमें २४ अक्षर होने चाहिए । कविता के लिए आवश्यक अक्षरों की पूर्ति के लिए २४ अक्षर नियोजित नहीं किये गये हैं वरन् सच तो यह है कि प्रस्तुत गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों के बारे में भी विवाद चला आता है । 'ण्यं' शब्द पर गाड़ी अटक जाती है, किसी ऋषि ने उसे एक और किसी ने दो अक्षर गिना है। जो एक गिनते हैं उनके हिसाब से इस मंत्र में २३ ही अक्षर ठहरते हैं । इस कमी के लिए 'ण्यं' के उच्चारण-क्रम को थोड़ी लम्बी ध्वनि में बोलकर २४ अक्षरों की पूर्ति की जाती है । चारों वेदों में अनेक गायत्री मन्त्र हैं उनमें ऐसा विवाद नहीं है । .... पिण्ड और ब्रह्माण्ड में कुल मिलकर २४ प्रमुख शक्तियाँ हैं । ब्रह्माण्ड में व्यापक शक्तियाँ पिण्ड मानव शरीर के साथ जुड़ी हुई हैं। चेतना के जो प्रमुख संस्थान इस शरीर में हैं, वे इसलिये नहीं हैं कि शरीर का दैनिक कार्य ठीक तरह चलाते रहें, वरन् इसलिये भी है कि निखिल ब्रह्मांड में संव्याप्त महान शक्ति-स्रोतों के साथ अपना सूक्ष्म सम्बन्ध जोड़े. रह सकें । इन्द्रियों के द्‌वारा यों मोटे तौर से वे विभिन्न वासनाओं की पूर्ति का सुख जुटाते प्रतीत होते हैं, पर उनकी वास्तविक महत्ता पराप्रकृति के विभिन्न विभागों के साथ-साथ जुड़े रहने और दिव्य आदान-प्रदान द्‌वारा दुर्बल मानव प्राणी को देवताओं की श्रेणी में लाकर बैठा देने में है। ....(गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन - १०.३)

ईश्वरीय कृपा का कारण

प्रचोदयात् शब्द में प्रेरणा का अनुरोध है । वस्तुतः यही ईश्वरीय अनुग्रह करने का केन्द्र भी है। प्रेरणा का तात्पर्य हैअन्तःकरण में प्रबल आकांक्षा की उत्पत्ति । यह ही समूचे व्यक्तित्व का सारतत्त्व है। अन्त:करण का अनुसरण मनः संस्थान करता है। मन के निर्देश पर शरीर काम करता है। क्रिया का परिणाम परिस्थिति के रूप में सामने आता है तदनुसार सुख-दुःख के वे स्वरूप सामने आते हैं जिन्हें पाने या हटाने के लिए मनुष्य इच्छा करता है। इच्छा की पूर्ति होने-न-होने में सहायक- बाधक और कोई नहीं, अन्तःकरण की प्रेरणा का स्तर ही आधारभूत कारण होता है। -(गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन-8.4)

चतुर्विंशति लक्षं वा गायत्री जप संयुतः । ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं सम्पूर्ण फल योगदम्।

जिस ब्राह्मण ने 24 लक्ष गायत्री जप कर लिया हो वही 'सत्पात्र' कहलाता है। उसी से फल की आशा की जा सकती है। ब्राह्मण को भूसुर अर्थात् पृथ्वी का राजा कहते हैं। उसे अपने पद और गौरव की रक्षा के लिए ब्राह्मणोचित कर्म जिसमें गायत्री उपासना प्रथम है- करनी ही चाहिए। जो उन्हें न करके साधारण सांसारिक झंझटों में अपना जीवन नष्ट करता है, भारी भूल करता है। यों मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है पर ब्राह्मण होना तो और भी बड़ा सौभाग्य है। जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त है वे अपनी इस देह को क्षुद्र कार्यों में न लगाकर आत्म-कल्याण का मार्ग अपनावें। उपासना द्वारा आत्म-बल प्राप्त करें और संसार में धर्मवृद्धि के लिए कटिबद्ध रहें।

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते । कृच्छराय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च।

अर्थात्- ब्राह्मण की यह देह क्षुद्र कामों के लिए नहीं है। वह इस लोक में कठिन तप करके परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिए ही बारह लाख गायत्री जपने पर ही ब्राह्मण पूर्ण कहलाता है। जिसने एक लाख भी जप न किया हो उसे वेद कार्यों में सम्मिलित नहीं करना चाहिए |

योगाधीनं परं ब्रह्म योगाधीनं परन्तपः। योगाधीना सर्व सिद्धिस्तस्माद् योगं समाश्रयेत्। योगेन ज्ञानमाणोति ज्ञानान्मोक्षमवाप्यात्॥ -(रूद्रयामलम- 45/23-34)

परब्रह्म योग के अधीन है,महान् तपस्य भी योग के अधीन है, सारी सिद्धियां भी योग के अधीन है, इसलिए योग का आश्रय अवश्य ग्रहण करना चाहिये।योग से ज्ञान प्राप्त

होता है. ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है।

मन्त्रभ्यास योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पते। न योगेन बिना मन्त्रेण विनाहिसः॥ द्वयोरभ्यास संयोगो ब्रह्म संसिद्धि कारणं। -(गायत्री की दैनिक एवं अनुष्ठान- 8.6)

मन्त्र अभ्यास और योग साधना से ही प्राप्त ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है । न मन्त्र के बिना योग हो सकता है, न बिना योग के मन्त्र साधना हो सकती है। दोनों के सम्मिश्रण से ही ब्रह्म की सिद्धि प्राप्त होती है।

गुरु से प्राप्त मन्त्र का अभ्यास सद्गुणों के लिये किया जाय तो परब्रह्म की सिद्धि से प्रत्येक कार्य सुविधापूर्वक सम्पन्न होता है। क्योंकि 24 गुणों को अपनाने को चौबीस योग कहते है। इसीलिए सभी लोग गणों को स्वीकार करते है एवं प्रशंसा करते हैं।

नाहं वसामि वैकण्ठे न योगिनाम् हृदयेच । मद्भक्ता: यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः ।

भगवान विष्णु ने नारद जी से कहा "न मै वैकुण्ठ मे रहता हूँ, न योगियों के हृदय मे रहता हूँ ,मेरा वास वही है जहाँ मेरे भक्त मेरा गुणो के लिए गान करते हैं।" यह पर गुणों के गान का अर्थ भगवान के गुणों के लिए चिंतन और आचरण करने से है। अर्थात जहाँ सद्गुण है वह ईश्वर हैं और जहाँ ईश्वर है वहाँ विजय है।

24 सद्गुणों को अपनाने को 24 योग कहते हैं।(गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन-10.12)

मंत्र विद्या के अनुसार मंत्रों के विनियोग के पाँच अंग हैं - ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व । इन्हीं से मिलकर मंत्रशक्ति पूर्ण बनती है। (गायत्री की दैनिक एवं अनुष्ठान- 8.14),

ऐ अग्नि ! ऋषि हमें पवित्र करते हैं और पांचो कोषों में प्रकाश भरते हैं, उनका मार्गदर्शन करते हैं। उन्ही महाप्राण की हम शरण में जाते हैं। (वाङ्मय13, 5.7)

क्योंकि गुण ही प्रत्यक्ष ऋषि हैं। (गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन -10.14)

सदगुणों के अभाव में प्रगति अवरुद्ध हो जाती है-

इन सद्गुणों की उपलब्धि में लोक शिक्षण, सम्पर्क एवं वातावरण के प्रभाव से भी बहुत कुछ प्रगति हो सकती है किन्तु अध्यात्म-विज्ञान के अनुसार साधना उपक्रम द्वारा भी इन विभूतियों में से जिसकी कमी दीखती है, जिसके सम्बर्धन की आवश्यकता अनुभव

होती है, उसके लिए उपासनात्मक उपचार किए जा सकते हैं । जिस प्रकार शरीर में कोई रासायनिक पदार्थ कम पड़ जाने से स्वास्थ्य लड़खड़ाने लगता है उसी प्रकार चौबीस सद्गुणों में से किसी में न्यूनता रहने पर उसी अनुपात में व्यक्तित्व त्रुटिपूर्ण रह जाता है । उस अभाव के कारण प्रगति पथ पर बढ़ने में अवरोध खड़ा होता है । फलत: पिछड़ापन लदा रहने से उन उपलब्धियों का लाभ नहीं मिल पाता जिनके लिए मनुष्य जीवन का सुरदुर्लभ अवसर हस्तगत हुआ है । आहार के द्वारा एवं औषधि, उपचार से शरीर की रासायनिक आवश्यकता पूरी हो जाती है तो फिर स्वस्थता का आनन्द मिलने लगता है । इसी प्रकार गायत्री उपासना के विशिष्ट उपचारों से सत्प्रवृत्तियों की कमी पूरी की जा सकती है। उस अभाव को पूरा करने पर स्वभावतः प्रखरता एवं प्रतिभा बढ़ती है । उसके सहारे मनुष्य अधिक पुरुषार्थ करता है, अधिक दूरदर्शिता का परिचय देता है, शारीरिक तत्परता और मानसिक तन्मयता बढ़ने से अभीष्ट प्रयोजन पूरा करने में सरलता रहने और सफलता मिलने लगती है। सत्प्रवृत्तियों की इसी परिणति को सिद्धियाँ कहते हैं।-गायत्री महा विद्या का तत्व दर्शन-10.01

विश्व धर्म गायत्री-

गायत्री के २४ अक्षरों में २४ ऐसी शिक्षायें सन्निहित है, जिन्हें धर्म का सार तत्त्व कह सकते हैं। यह किसी देश, जाति, समाज, संप्रदाय के लिए नहीं वरन समस्त मानव समाज का नीति शास्त्र है। अतीत के स्वर्णिम काल में इन २४ अक्षरों को ही नीति-मर्यादा का अनुशासन माना जाता था। भविष्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्र अपना कर समस्त मानव समाज को एकता के सूत्र में बाँधना पड़ेगा। एकता के चार सूत्र हैं। (१) विश्व - राष्ट्र (२) विश्व - भाषा (३) विश्व - संस्कृति (४) विश्व मानस। इनके लिए आधारभूत एकता, विश्व दर्शन से ही बनेगी। इसे विश्व धर्म भी कह सकते हैं... इसके लिए नये सिरे से खोज या निर्धारण की आवश्यकता नहीं है। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने अपने समय के सतयुग में इस दिशा में पहले ही बहुत अन्वेषण, परीक्षण एवं अनुभव सम्पादित कर लिए हैं। इन सिद्धान्तों को अपनाने के लिए, जन-समाज को सहमत किया था। फलतः मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण की अपनी भावी कामना का प्रत्यक्ष स्वरूप उन दिनों सर्वत्र ही होता रहा था।... इसके लिए कोई आयोग बैठाने की आवश्यकता नहीं है। भूतकाल के प्रयोगों की पुनरावृत्ति करने भर से काम चल जायेगा।... प्राचीन को अपना लिया जाए, अथवा नये सिरे ढूंढ लिए जाए, विश्व शान्ति

के लिए उन्हीं सिद्धान्तों को अपनाना होगा, जिसमें चिर प्राचीन एवं चिर नवीन का आश्चर्य जनक समन्वय है।... गायत्री उपासक का पूरा ध्यान आत्म परिष्कार में नियोजित हो यही संक्षेप में गायत्री मंत्र का अर्थ और तात्पर्य है। जो उसका पालन कर सकेगा। वह उन सभी लाभों से लाभान्वित होगा जो गायत्री उपासना के सन्दर्भ में शास्त्रकारों और ऋषियों ने बतायें हैं। ... (गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन - ८.५)

गायत्री के लाभ की कसौटी-

गायत्री का वास्तविक एवं परिपूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए साधक को अपना ब्राह्मणत्व परिपक्व एवं परिपुष्ट करना होता है। उस महती अनुकम्पा को करतलगत करने से पूर्व इस बात की परीक्षा देनी होती है कि वह ब्राह्मण है या नहीं ? जो इस कसौटी पर खरा उतरता है, उसे गायत्री महाशक्ति का साक्षात्कार होता है और उसे सब कुछ मिल जाता है जो भगवती के पास है।... (गायत्री महाविद्य्ाा का तत्त्व दर्शन -३.२८)

13. विनियोग का अर्थ एवं महत्व- विनियोग का अर्थ एवं महत्व- वि माने विशेष, नि माने निम्न तथा योग (24 सद्गुणों को अपनाने को 24 योग कहते हैं - गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन-10.12)का अर्थ जुड़ना होता है। अर्थात् जैसे विद्युत् उत्पादन गृह से ज्यादा पावर की विद्युत् आती है, उसे विशेष प्रकार का ट्रांसफरमर लगाकर निम्न करते हुए अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु जोड़ दिया जाता है,जो एक प्रकार का विनियोग हुआ। इसी प्रकार ईश्वरीय चेतन धारा प्रकृति को चला रही है। जिस चेतन धारा को ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व के माध्यम से निम्न कर शरीर के तत्वों के साथ जोड़ देते हैं। जिसे विनियोग कहते हैं।

पंडित श्री राम शर्मा आचार्य जी ने अपने वाङ्गमय गायत्री की दैनिक एवं अनुष्ठान-८.१४ में विनियोग के बारे लिखा है- मंत्र विद्या के अनुसार मंत्रों के विनियोग के पाँच अंग हैं- ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व । इन्हीं से मिलकर मंत्रशक्ति पूर्ण बनती है।जिसका पालन विनियोग में किया गया है |

श्रीप्रपंचसारतन्त्रम्-6/2-5 में ऋषि, छन्द, देवता, बीज और तत्व-

ऋषिर्गुरुत्वाच्छिरसैव धार्यः छन्दोऽक्षरत्वाद्रसनागतं स्यात्।धियाऽवगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रदिष्टा मनुदेवता च ॥2॥

-मन्त्र की साधना में मन्त्र का सर्वप्रथम साक्षात्कार करने वाला 'ऋषि' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है । इसलिये मन्त्र-साधना में सबसे पहले ऋषि का ही स्मरण करके उसे शरीर के सर्वोच्च स्थान सिर पर न्यस्त या स्थापित किया जाता है ।

छन्दस् अक्षरात्मक होता है और अक्षर का स्थान वाक् है । अत: छन्दस् का न्यास वागिन्द्रिय में किया जाता है ।

मन्त्र के देवता का ज्ञान बुद्धि से होता है और देवता का स्थान हृदय है । अत: देवता का न्यास हृदय में किया जाता है।

ऋषि-

ऋषिर्वर्णादिकौ धातू स्तो गत्या प्रापणेन च।यात्याभ्यां यत्स्वरूपं स गुरुः स्यादृषिवाचकः ॥3॥

'ऋषि' शब्द का निर्माण गति अर्थ वाले धातु 'ऋ गतौ' तथा प्राप्ति अर्थ षिङ प्रापणे' से होता है । शिष्य को गतिशील बनाकर जो उसे 'स्वस्वरूप परमात्मन तक ले जाता है, वह गुरु है । गुरु सर्वोच्च है, अत: परमात्मा ही गुरु है ।गुरु ही परमात्मा है |

छन्द-

इच्छादानार्थको धातू स्तः छदाद्यश्च दादिकः।तयोरिच्छां ददातीति छन्दो मन्त्रार्णवाचकम् ॥4॥

'छन्दस' शब्द इच्छा अर्थ वाली 'छदु' (इच्छायाम्) तथा दान अर्थ वाली 'दाण्' (दाने) धातुओं के योग से होता है । साधक को उसकी इच्छा के अनुरूप फल प्रदान करने वाले 'तत्त्व' को 'छन्दस्' कहा जाता है । यह छन्दस् अक्षरमय है । अत: अक्षरमय मन्त्र के वर्ण ही छन्दस कहे जाते हैं।

गायत्री एक वैदिक छन्द तो है ही, उस छन्द के सम्यक उच्चारण से जो सामान्यतः मिलना चाहिए वह तो मिलता ही है । पर विशेषता एक और भी है कि इन २४ अक्षरों में प्रत्येक अक्षर एक छन्द है । प्रत्येक अक्षर अपने-अपने में एक परिपूर्ण कविता है । इसे २४ काव्यों का एक समन्वय गुच्छक भी कहा जा सकता है । २४ प्रभावशाली औषधियों से मिला कर बनाई हुई औषधि रसायन की तरह २४ तारों की किसी उत्कृष्ट वीणा की तरह गायत्री के २४ अक्षर अपनी विशिष्ट क्रिया उत्पन्न करते हैं । गायत्री का हर अक्षर अपने आप में परिपूर्ण गीतपरिपूर्ण शक्ति प्रवाह है इसका स्पष्टीकरण गायत्री तन्त्र में किया गया है।

समस्त गायत्री साधना का स्वतन्त्र विधान है । यों स्थिति के अनुरूप उस विधान के भी भेद और उपभेद हैं किन्तु २४ अक्षरों में सन्निहित किसी शक्ति विशेष की साधना करनी हो तो व्यक्ति के स्तर तथा प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए जो निर्धारण करना पड़े, उसका संकेत 'छन्द' रूप में किया गया है । अच्छा तो यह होता कि पिंगलशास्त्र में जिस प्रकार छन्दों के स्वरूप का स्पष्ट निर्धारण किया गया है उसी प्रकार साधना की छन्द प्रक्रिया का भी शास्त्र बना होता, भले ही उसका विस्तार कितना ही बड़ा क्यों न करना पड़ता । यदि ऐसा हो सका होता तो सरलता रहती। किन्तु इतने पर भी स्वतन्त्र निर्धारण की आवश्यकता से छुटकारा नहीं मिलता ।

जो भी हो आज स्थिति यह है कि छन्द रूप में यह संकेत मौजूद हैं कि उपचार की दिशा-धारा क्या होनी चाहिए । यह सांकेतिक भाषा पारंगतों के लिए इस अंगुलि निर्देश से भी काम हो सकता है और प्राचीन काल में चलता भी रहा है | पर आज की आवश्यकता यह है कि

‘गुरु परम्परा’ तक सीमित रहने वाली रहस्यमयी विधि-व्यवस्था को अब सर्वसुलभ बनाया जाय ।

प्राचीनकाल में ऐसे प्रयोजन गोपनीय रखे जाते थे । आज भी विस्फोट जैसे प्रयोगों की विधियाँ गोपनीय ही राखी जा रही हैं । राजनैतिक रहस्यों के सम्बन्ध में भी अधिकारियों को गोपनीयता की शपथ लेनी पड़ती है, पर एक सीमा तक ही यह उचित है । 'छन्द सम्बन्ध में भी एक सीमा तक गोपनीयता बरती जा सकती है, फिर भी उसका उतना विस्तार तो होना ही चाहिए कि उसके लुप्त होने का खतरा न रहे।

गायत्री मन्त्र के हर अक्षर का एक स्वतन्त्र छन्द स्वतन्त्र साधना विधान है |

सांख्य दर्शन के अनुसार यह सारा सृष्टिक्रम २४ तत्त्वों के सहारे चलता है । उनका प्रतिनिधित्व गायत्री के २४ अक्षर करते हैं |

गायत्री के समग्र विनियोग में सविता-देवता, विश्वामित्र-ऋषि एवं गायत्री छन्द का उल्लेख किया गया है, परन्तु उसके वर्गीकरण में प्रत्येक अक्षर एक स्वतन्त्र शक्ति बन जाता है । हर अक्षर अपने आप में एक मन्त्र है । ऐसी दशा में २४ देवता, २४ ऋषि एवं २४ छन्दों का उल्लेख होना भी आवश्यक है । तत्वदर्शियों ने वैसा ही किया भी है । गायत्री विज्ञान की गहराई में उतरने पर इन विभेदों का स्पष्टीकरण होता है । जैसे नारंगी ऊपर

से एक दीखती है पर छिलका उतारने पर खण्ड घटक स्वतंत्र इकाइयों के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं । गायत्री को नारंगी की उपमा दी जाय तो उसके अन्तराल में २४ अक्षरों के रूम में २४ खण्ड घटकों के दर्शन होते हैं । जो विनियोग एक समग्र गायत्री मंत्र का है, वैसा ही प्रत्येक अक्षर का भी आवश्यक होता है । चौबीस अक्षरों के लिए चौबीस विनियोग बनने पर उनके २४ देवता, २४ ऋषि एवं २४ छन्द भी बन जाते हैं ।

ऋषि गुण हैं, देवता प्रभाव, छन्द को विधाता कह सकते हैं । मोटे रूप में पद्यों की संरचना को छन्द कहते हैं ।

देवता-

आत्मनो देवताभावप्रदानाद् देवतेति च।पदं समस्ततन्त्रेषु विद्वद्भिः समुदीरितम् ।।5॥

'देवता' शब्द की निष्पत्ति क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति तथा गत्यर्थकादि धातु 'दिवु' और विस्तार अर्थ वाली धातु 'तक्षु' या 'त्वक्षु' से होता है । जो जीवात्मा के अज्ञानादि दोषों को क्षीण करके उसमें द्युति, देवत्व तथा आत्मविस्तार में योग देता है, उसे 'देवता' कहा जाता है । मन्त्र-साधना में मन्त्र का देवता साधक को मनुष्यत्व से उठाकर देवत्व तक पहुँचाता है।

बीज-

वेदमंत्र का संक्षिप्त रूप बीज मंत्र कहलाता है । वेद वृक्ष का सार संक्षेप में बीज है । मनुष्य का बीज वीर्य है । समूचा काम विस्तार बीज में सन्निहित रहता है । गायत्री के तीन चरण हैं । इन तीनों का एक-एक बीज ‘भूः, भुवः, स्वः' है । इस व्याहृति भाग का भी बीज है-ॐ । यह समग्र गायत्री मन्त्र की बात हुई । (गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन - १०.१०)

तत्त्व-

पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड की चेतनाओं-शक्तियों-क्षमताओं एवं संवेदनाओं को आपस में जोड़ते और प्रत्यावर्तन करते हैं ऐसे स्रोत २४ हैं इनमें से एक-एक स्रोत का प्रतिनिधित्व गायत्री का एक-एक अक्षर करते है... (गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन -१०.४)

इस चेतना के जिन-जिन माध्यमों से अपने अस्तित्त्व का परिचय देने की संभावनाएँ ग्रहण करने तथा अभीष्ट प्रयोजन सम्पन्न करने में आवश्यकता पड़ती है, उन्हें तत्त्व कहा गया है। ऐसे चेतन तत्त्व २४ हैं... (गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन -१०.१८)

प्रचोदयात शब्द में प्रेरणा का अनुरोध है।वस्तुतः यही ईश्वरीय अनुग्रह का केन्द्र भी है। प्रेरणा का तात्पर्य है अन्तः करण में प्रबल आकांक्षा की उत्पत्ति।यह ही समूचे व्यक्तित्व का सार तत्त्व है। अन्तःकरण का अनुसरण मनः संस्थान करता है।मन के निर्देश पर शरीर काम करता है।क्रिया का परिणाम परिस्थिति के रूप में सामने आता है।तद्नुसार सुख-दुःख के वे स्वरूप सामने आते हैं।जिन्हें पाने या हटाने के लिए मनुष्य इच्छा करता है।इच्छा की पूर्ति होने न होने में सहायक-बाधक और कोई नहीं, अन्तः करण की प्रेरणा का स्तर ही आधारभूत कारण होता है।-(गायत्री महाविद्या का तत्त्व दर्शन - ८.४)

अथर्व वेद के परिशिष्टसन्ध्यासूत्रव्याख्या-6 में गायत्री के ऋषि, छन्द, देवता आदि को न जानने और जानने से हानि-लाभ-

जो गायत्री मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता विनियोग एवं गायत्री के स्वरूप आदि को जानकर गायत्री का जप-अनुष्ठान अथवा पुरश्चरण करते हैं | उसको पुरश्चरण के मध्य में होने वाला जनन और मरण सम्बन्धी सूतक नहीं लगता।'

एतद् ज्ञात्वा तु मेधावी जपं होमं करोति यः। न भवेत्सूतकं तस्य मृतकं च न विद्यते॥ साक्षाद् भवत्यसौ ब्रह्मा स्वयम्भूः परमेश्वरः। यस्त्वेवं न विजानाति गायत्री तु यथाविधि ।। कथितं सूतकं तस्य मृतकं च मया नघ । नैव दानफलं तस्य नैव यशफलं भवेत् ॥ न च तीर्थफलं प्रोक्तं तस्यैवं सूतके सति ॥ (अथर्ववेदपरिशिष्टसन्ध्यासूत्रव्याख्या ६)

'जो बुद्धिमान गायत्री-मन्त्र के छन्द देवतादि को जानकर जप या होम करता है तो उसे मृतक सूतक नहीं लगता क्योंकि वह जापक साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्मा तथा परमेश्वर स्वरूप हो जाता है, किन्तु गायत्री के ऋषि, छन्द, देवतादि को जो विधिपूर्वक नहीं जानता उसके लिय ही मैं मृतक सूतक का विधान किया और ऐसे व्यक्तियों को सूतक अवस्था में किये गये दान-यज्ञ और तीर्थादि का फल नहीं मिलता |

विनियोग पढ़ने का नियम-1. एक विनियोग एक बार पढ़कर मन्त्र की जितनी माला जप करने की आवश्यकता हो, उतना जप करें। उसके बाद दूसरे चक्र में जप करना हो तो उस चक्र से सम्बन्धित विनियोग पढ़कर जप करें।

2. एक गुण के कई विनियोग होते है। उसके पीछे एक वर्ण अक्षर का कई चक्रों में स्थित होना है। जैसे ॐ प्रज्ञा का बीज है, जो सहस्रार चक्र मे होता है। फिर आत्मा हृदय से होकर संसार की ओर आज्ञा चक्र में स्थापित होता है, इसलिए प्रज्ञा के तीन विनियोग होते है। जो चक्रों मे प्राण और चेतना के सन्तुलन के लिए ईश्वरीय योजना के अनुरूप

कार्य करता है।

3. इसी प्रकार अन्य गुणों का भी विनियोग अधिक संख्या में होने का कारण समझना चाहिए।

4. दाएँ हाथ में जल (जल की उपलब्धि नहीं होने पर भावनात्मक, मानसिक रूप से क्रिया सम्पन्न करें) लेकर विनियोग एक बार पढ़कर धरती माता को समर्पित करें और फिर मन्त्र का जप करें।

मन्त्र का स्वरूप-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मंत्र जप के समय ध्यान- विनियोग के अनुसार गायत्री मंत्र का मन में उच्चारण सुनते हुए (जप करते हुए) सद्गुण के रूप में चेतना का अवतरण संबंधित चैतन्य तत्व ग्रहण कर रहे हैं।

चक्रों में माला जप करने का विधान- एक दिन में या एक गुण के लिए जितनी माला जप करनी हो उसे चक्रों के हिसाब से बाट कर करनी चाहिए | जैसे प्रज्ञा गुण में 16 माला जप करना है तो प्रज्ञा गुण तीन चक्रों में है-

1.सहस्रार, 2. हृदय , 3. आज्ञा चक्रों में गमन करता है | तो अपनी सुविधा के अनुसार सभी में 5-5 माला और किसी एक चक्र में एक माला और कर लेने पर 16 माला होती है | इसी प्रकार सभी सदगुणों के लिए बाट कर किया जा सकता है |

जप के लिए तीनों कालों की मुद्राएँ

अ. सुबह के समय बाएँ हाथ की हथेली ज्ञान मुद्रा में बाएँ घुटने पर उपर की ओर व दाएँ हाथ में माला हृदय के पास।

ब, दोपहर के समय बाएँ हाथ की हथेली ज्ञान मुद्रा में बाएँ घुटने पर खड़ी व दाएँ हाथ में माला हृदय के पास।।

स. सायं के समय बाएँ हाथ की हथेली ज्ञान मुद्रा में घुटने पर नीचे की तरफ व दाएँ हाथ में माला दाएँ घुटने पर।

गायत्री मन्त्र जप और यज्ञ के विनियोग का स्वरूप-

1.गायत्री मन्त्र **जप** के लिए 24 तत्वों और धर्म (आचरण या व्यवहार) की शुद्धि के

लिए 24 गुणों का 24 विनियोग निम्न प्रकार है |

2.गायत्री मन्त्र से **यज्ञ** के लिए 24 तत्वों और धर्म (आचरण या व्यवहार) की वृद्धि के लिए निम्न विनियोग में जप के स्थान पर यज्ञ जोड़ लेने से कार्य पूरा हो जाता है जैसे-

ॐ अस्य गायत्री **यज्ञस्य** वामदेव: ऋषिः गायत्री छन्दः अग्निः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... पृथ्वीतत्वस्य व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च प्रज्ञारूपेण वामदेवस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं **यज्ञे** विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा इदम प्रज्ञा रूपेण वामदेव ऋषिभ्य: इदम न मम ।

इसी प्रकार सभी गुणों के लिए परिवर्तित कर यज्ञ किया जाना चाहिए

जप के लिए विनियोग- विनियोग एक बार पढ़ कर जप करने की दृष्टि से अलग-अलग चक्रों में करने के लिए स्वचालित प्रक्रिया बनी रहे इस लिए चक्र बदलने पर पुन: विनियोग पढ़ने की आवश्यकता नहीं है | उसके स्थान अभीष्टतत्त्वचक्रकोषवायवश्च च लिखा जा चुका है |

गुणों के लिए जप का महत्व:- “अमेरिका का विश्वास है कि अधिक अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न करने से शत्रु को हराया जा सकेगा परन्तु आध्यात्मिक शक्तियों का विश्वास होना चाहिए कि सत्य, प्रेम (सदज्ञान) और न्याय की पवित्र भावनाओं का प्रसार करके सूक्ष्म लोकों की गंदगी को दूर किया जा सकता है | हम न्याय के टैंक, प्रेम के वायुयान और सत्य के बम अपने मस्तिष्क कारखानों में तैयार करें , जिसकी मार से शत्रु शैतान का बल चूर-चूर हों जाएगा | .... हमें अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक अंश आध्यात्मिक

हथियार बनाने में लगाना चाहिए |”- अखण्ड ज्योति अप्रैल 1942, पृष्ठ- 05

१. सद्गुण - प्रज्ञा । चक्र- सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य वामदेव: ऋषिः गायत्री छन्दः अग्निः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... पृथ्वीतत्वस्य व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च प्रज्ञारूपेण वामदेवस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२. सद्गुण - सृजन । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, ब्रह्मग्रन्थि, आज्ञा, विशुद्धाख्य, स्वाधिष्ठान, मणिपुर।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य अत्रि ऋषिः उष्णिक्छन्दः प्रजापतिः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समान-अपानवायू, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... जलतत्वस्य समान-अपानवाय्वो: च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सृजनरूपेण अत्रेः ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

३. सद्गुण- व्यवस्था । चक्र - सहस्त्रार, विष्णुग्रन्थि, आज्ञा, विशुद्धाख्य, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, मूलाधार।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य वशिष्ठः ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः चन्द्रमा देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समान-अपानवायू, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... अग्नितत्वस्य समानापान वाय्वोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च व्यवस्थारूपेण वशिष्ठस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

४. सद्गुण- नियंत्रण । चक्र- सहस्त्रार, हृदय, रुद्रगन्थि, स्वाधिष्ठान, मूलाधार, आज्ञा, विशुद्धाख्य, अनाहत।

विनियोग :- ॐ अस्य गायत्रीजपस्य शुक्रः ऋषिः वृहति छन्दः ईशानः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राणव्यानापानवायवः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... वायुतत्वस्य प्राणव्यानापानवायूनाम् च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च नियंत्रणरूपेण शुक्रस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

५. सद्गुण- सद्ज्ञान । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा, विशुद्धाख्य।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य कण्वः ऋषिः पंक्ति छन्दः सावित्री देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समान-व्यानवायू, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण

समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... आकाशतत्वस्य समानव्यानवाय्वोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सद्ज्ञानरूपेण कण्वस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।
६. सद्गुण- उदारता । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा, विशुधाख्य, अनाहत ।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य पराशरः ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः आदित्यः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... गन्धतन्त्रमात्रायाः व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च उदारतारूपेण पराशरस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।
७. सद्गुण- आत्मीयता । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, स्वाधिष्ठान, अनाहत।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य विश्वामित्रः ऋषिः जगतीछन्दः बृहस्पतिः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राणवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... रसतन्मात्रायाः प्राणवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च आत्मीयतारूपेण विश्वामित्रस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

८. सद्गुण - आस्तिकता । चक्र - सहस्त्रार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य कपिलः ऋषिः अतिजगतिछन्दः मित्रावरूणौदेवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य अपानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... रूपतन्मात्रायाः अपानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च आस्तिकतारूपेण कपिलस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

९. सद्गुण - श्रद्धा । चक्र - सहस्त्रार, स्वाधिष्ठन, मूलाधार।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य शौनकः ऋषिः शक्वरीछन्दः भगः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... स्पर्शतन्मात्रायाः व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च श्रद्धारूपेण शौनकस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१०. सद्गुण- शुचिता । चक्र - सहस्त्रार, मूलाधार, स्वाधिष्ठान

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य याज्ञवल्क्यः ऋषिः अतिशक्वरीछन्दः ईश्वरः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य उदानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-

प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... शब्दतन्त्रमात्रायाः उदानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च शुचितारूपेण याज्ञवल्क्यस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

११. सद्गुण- संतोष । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, मूलाधार।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य भारद्वाजः ऋषिः धृतिछन्दः गणेशः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... पायुकर्मेन्द्रियस्य समानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च संतोषरूपेण भारद्वाजस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१२. सद्गुण- सहृदयता । चक्र - सहस्त्रार, मूलाधार

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य जमदग्निः ऋषिः अतिधृतिछन्दः त्वष्टा देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य उदानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... उपस्थकर्मेन्द्रियस्य जलतत्वस्य उदानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम्

उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सहृदयतारूपेण जमदग्नेः ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।
१३. सद्गुण - सत्य । चक्र - सहस्त्रार, विशुद्धाख्य

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य गौतमः ऋषिः विराट्छन्दः पूषा देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य अपानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... पादकर्मेन्द्रियस्य अपानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सत्यरूपेण गौतमस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।
१४. सद्गुण- पराक्रम । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, अनाहत, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, विशुद्धाख्य।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य मौद्गल्यः ऋषिः प्रस्तारपंक्तिछन्दः इन्द्राग्नि देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राणापानव्यानवायवः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... हस्तकर्मेन्द्रियस्य प्राणापानव्यानवायूनाम् च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च पराक्रमरूपेण मौद्गल्यस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१५. सद्गुण- सरसता । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा, विशुद्धाख्य ।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य वेदव्यासः ऋषिः कृति छन्दः वायुः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समान-व्यानवायू, भुवः शक्तिः, स्व कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... वाक्कर्मेन्द्रियस्य समान-व्यानवायूवोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सरसतारूपेण वेदव्यासस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१६. सद्गुण- स्वावलम्बन । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, स्वाधिष्ठान, मूलाधार, आज्ञा, विशुद्धाख्य।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य लोमशः ऋषिः प्रकृतिछन्दः वामदेवः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य समान-व्यानवायू, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... नासिकाज्ञानेन्द्रियस्य समान-व्यानवाय्वोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च स्वावलम्बनरूपेण लोमशस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१७. सद्गुण- साहस । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, मणिपुर।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य अगस्त्यः ऋषिः आकृतिछन्दः मैत्रावरूणौ देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राणवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-

प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... जिह्वाज्ञानेन्द्रियस्य प्राणवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च साहसरूपेण अगस्त्यस्य ऋषे: प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१८. सद्गुण- ऐक्य । चक्र - सहस्त्रार, मणिपूर।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य कौशिकः ऋषिः विकृतिछन्दः वैश्वदेवः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य अपानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... चक्षु ज्ञानेन्द्रियस्य अपानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च ऐक्यरूपेण कौशिकस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

१९. सद्गुण- संयम । चक्र - सहस्त्रार, हदय, अनाहत ।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य वत्सः ऋषिः, संस्कृतिछन्दः मातृकः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राणवायुः, भुवः शक्तिः, स्व: कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... त्वक् ज्ञानेन्द्रियस्य प्राणवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्,

आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च संयमरूपेण वत्सस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२०. सद्गुण- सहकारिता । चक्र - सहस्त्रार, अनाहत ।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य पुलस्त्यः ऋषिः अक्षरपंक्तिछन्दः विष्णुः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य अपानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... कर्णज्ञानेन्द्रियस्य अपानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सहकारितारूपेण पुलस्त्यस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२१. सद्गुण- श्रमशीलता । चक्र - सहस्त्रार, मणिपूर ।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य माण्डूक्यः ऋषिः भूः छन्दः वसुगणः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... मनकर्मेन्द्रियस्य व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च श्रमशीलतारूपेण माण्डूक्यस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२२. सद्गुण- सादगी । चक्र - सहस्त्रार, मणिपूर।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य दुर्वासा ऋषिः भुव: छन्दः रूद्रगणः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य उदानवायुः, भुवः, शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... बुद्धिज्ञानेन्द्रिस्य उदानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च सादगीरूपेण दुर्वासा ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२३. सद्गुण- शील । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा, मूलाधार, अनाहत।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य नारदः ऋषिः स्व: छन्दः कुबेरः देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य प्राण-समानवायू, भुवः शक्तिः, स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च........... चित्ततन्मात्रायाः प्राणसमानवाय्वो: च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च शीलरूपेण नारदस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२४. सद्गुण- समन्वय । चक्र - सहस्त्रार, हृदय, आज्ञा, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, विशुद्धाख्य।

विनियोग : ॐ अस्य गायत्रीजपस्य कश्यपः ऋषिः ज्योतिष्मतिछन्दः अश्विनीकुमारौ देवता अभीष्टतत्वचक्रकोषवायवश्च ॐ भूः इति बीजाक्षरस्य व्यानवायुः, भुवः शक्तिः,

स्वः कलाकीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... ज्ञानतत्वस्य व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं-गायत्रीविद्यासिद्धयर्थं च समन्वयरूपेण कश्यपस्य ऋषेः प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

महामृत्युंजय मंत्र --महामृत्युंजय मंत्र से उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति और आध्यात्मिक उन्नति होती है। **विनियोग** -ॐ अस्य त्र्यम्बक मन्त्र जपस्य वशिष्ठ: ऋषि: अनुष्टुप छन्द: पार्वतीपति देवता, जल तत्वं, स्वाधिष्ठान चक्रं, व्यान वायुं, त्र्यं बीजाक्षारं बं शक्ति कं कीलकं मम मर्यादारक्षणार्थसहितं, तत्क्षणं प्रभावकारि सर्वपापनाशनं, रागद्वेषालस्य-प्रमादापमानतिरस्कार-कटु-अपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण समाप्त्यर्थं, मधुरपवित्रसम्बन्ध कर्मणां तत्प्रभावाणां च पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थं च.......... ज्ञानतत्वस्य व्यानवायोः च शोधन-संवर्धन-सिद्धऽर्थं च हृदयस्य चरित्रस्य च सत्यन्यायसद्ज्ञानस्य पक्षे पूर्णतः स्थायिरूपेण संस्थापनार्थम् उत्तमस्वास्थ्यप्राप्त्यर्थम्, आध्यात्मिकोन्नतये परिवारलोकसेवार्थं, मृत्युंजय भगवान प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

मन्त्र का स्वरूप- ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

14. माला शयन प्रार्थना - माला को दोनों हाथों में रखकर, कार्यरत प्राण चेतना को विश्रांति हेतु प्रार्थना करें।

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव। शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा।

(वाड्मय12, 8.35)

15. समर्पण- धरती माता को एक आचमनी जल समर्पित करें और स्पर्श कर बोलें

1. ॐ श्री गुरुवे नमः, 2. ॐ श्री गायत्री देव्यै नमः ।

उपासना के बाद समर्पण -

हे गुरुदेव-माता जी हमारे पुण्य की सम्पूर्ण ऊर्जा आपके श्री चरणों में समर्पित है। हम गुण, कर्म स्वभाव से व्यक्ति, परिवार व समाज निर्माण के कार्यों को शुद्ध चरित्र, निर्लोभ तथा निरहंकारिता पूर्वक संघबद्ध हो कर निष्ठापूर्वक प्रसन्न मन से करते रहें, इस हेतु हम पर सही समय पर प्रेरणा मार्गदर्शन संरक्षण तथा परिमार्जन की सतत कृपा बनाये रखें। 🙏🙏

16. नमस्कार-हाथ जोड़कर विष्णु ग्रन्थि में हजारों बहिर्मुखी चैतन्य कल्याणकारी तत्वों का विराट के रूप में विस्तार हो रहा है, ऐसी भावना के साथ नमस्कार करें।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्त्रमूर्तये, सहस्त्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे। सहस्त्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्त्रकोटि युगधारिणे नमः॥ -(कर्मकाण्ड भास्कर -57)

17. शभकामना- श्रेष्ठ मार्ग पर चलकर सफलताओं को प्राप्त करने के लिए सबके लिए शुभकामना करें।

ॐ स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ता, न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः। गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।-(कर्मकाण्ड भास्कर-66)

18. शान्तिपाठ - कलश के जल को आम्र -पल्लव से सर्वत्र सिञ्चन करते हुए भावना करते जाएँ कि सर्वत्र सुख और आनन्द के साथ शान्ति स्थापित हो रही है।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः,शान्तिब्रह्मशान्तिः, सर्व शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि। ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः । सर्वारिष्ट सुशान्तिर्भवतु।-(कर्मकाण्ड भास्कर - 66)

19. सूर्याघ्र्यदानम्- कलश का जल या अलग से शुद्ध जल (जो आचमन न किया गया हो) तुलसी चौरा (गमला) या किसी पौधे में डालते हुए सूर्य देव को समर्पित करें।

ॐ सूर्यदेव! सहस्त्रांशो, तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां भक्तया, गृहाणाञ्र्या दिवाकर। ॐ सूर्याय नमः, आदित्याय नमः, भास्कराय नमः।-(कर्मकाण्ड भास्कर -68)

(हे सूर्यदेव! जप की समस्त ऊर्जा आपके चरणों में समर्पित है, इस ऊर्जा को अपने आध्यात्मिक तेज से पूरे भूमंडल पर फैलाने की सतत् कृपा बनाये रखें, जिससे हम सभी लोग सद्बुद्धि, सद्गुणों तथा शक्तियों का उज्ज्वल की प्राप्ति के सदुपयोग करने के लिए सतत् प्रेरणा, मार्गदर्शन, संरक्षण तथा परिमार्जन की कृपा प्राप्त करते रहें)।

20. सूर्य उपस्थान - (केवल सुबह, दोपहर- हथेलियों को सूर्य की तरफ करके कन्धे के बराबर फैलाकर निम्न मंत्र बोलें)

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शत छ, शृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात् ।

-(कर्मकाण्ड भास्कर -196)

21. प्रदक्षिणा - दीक्षा अनुबन्ध के अनुसार पैरों से चलकर गुरु का कार्य गुण, कर्म, स्वभाव से करते रहेंगे।

ॐ यानि कानि च पापानि, ज्ञाताज़ातकृतानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति, प्रदक्षिण-पदे पदे।

(कर्मकाण्ड भास्कर - 68)

22. विसर्जन - हृदय के पास हाथ जोड़कर प्रार्थना की मद्रा में भगवती गायत्री का विसर्जन करें। **उत्तमे शिखरे देवि, भूम्यां पर्वतमुर्धनि। ब्राह्मणेभ्यो हयनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम ।**

(गायत्री महाविज्ञान-257)

23. क्षमा प्रार्थना - हाथ जोड़कर नम्र भाव से निरहंकारिता पूर्वक माता के सद्गुणों का अनुसरण करने की भावना करते हुए क्षमा प्रार्थना करें।

न मन्त्रं नो यन्त्र, तदपि च न जाने स्तुतिमहो, न च आवाहनं ध्यानं, तदपि च न जाने स्तुति-कथाः।

न जाने मुद्रास्ते, तदपि च न जाने विलपनम्, परं जाने मातस्त्वद् अनुसरणं क्लेषहरणम्।

(गायत्री महाविज्ञान-257)

24. धन्यवाद:

(अनुष्ठानों की एक आवश्यकता यह है कि उसका मार्गदर्शन संरक्षण एवं परिमार्जन करने के लिए किसी एक व्यक्ति को नियुक्त करना पड़ता है)। (वाङ्मय-12, 6.26) ....जिसके लिए प्रार्थना का पाठ करें

"हे! गुरुदेव-माता जी, दादा गुरुदेव, ऋषिसत्ताओं को प्रणाम। हम पर मार्गदर्शन, संरक्षण तथा परिमार्जन की सतत् कृपा बनाए रखें, जिससे स्वधर्म का आचरण संघबद्ध होकर

निष्ठापूर्वक, पवित्र मार्ग से कल्याणकारी लक्ष्य की दिशा में भावना, परिश्रम तथा प्रामाणिकतापूर्वक योगसाधना व लोकसेवा के कार्यों को शालीनता तथा उदारतापूर्वक अपने आध्यात्मिक साथियों के साथ निर्विघ्न रूप से, प्रसन्न मन से सद्व्यवहार के साथ करते रहें।"